योगविद्या

वर्ष 9 अंक 1
जनवरी 2020
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2020

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : स्वामी निरंजनानंद सरस्वती

अन्दर के रंगीन फोटो 1-4 : प्रगतिशील योगविद्या प्रशिक्षण अक्टूबर 2019

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

संतुलित जीवन

यदि आप सुखी एवं स्वस्थ जीवन व्यतीत करना चाहते हैं और आध्यात्मिक उन्नति करना चाहते हैं, तो आपको मनोविज्ञान का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है। अधिकांश शारीरिक रोग बीमार मन की उपज होते हैं। इस तथ्य को सदा याद रखिये। भावनात्मक असन्तुलन से ही सभी प्रकार के स्नायविक और शारीरिक रोग जन्म लेते हैं।

आपकी जीवनचर्या सन्तुलित होनी चाहिए। कार्य और विश्राम में सन्तुलन होना आवश्यक है। अत्यधिक शारीरिक थकान या मानसिक तनाव से बचना चाहिए। सभी प्रयासों में आपको मध्य-मार्गी होना चाहिए। किसी भी प्रकार की अति से बचना चाहिए। तभी आप स्वस्थ और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं, आध्यात्मिक साधना कर सकते हैं तथा अपने सभी प्रयासों में सफलता पा सकते हैं।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय
सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

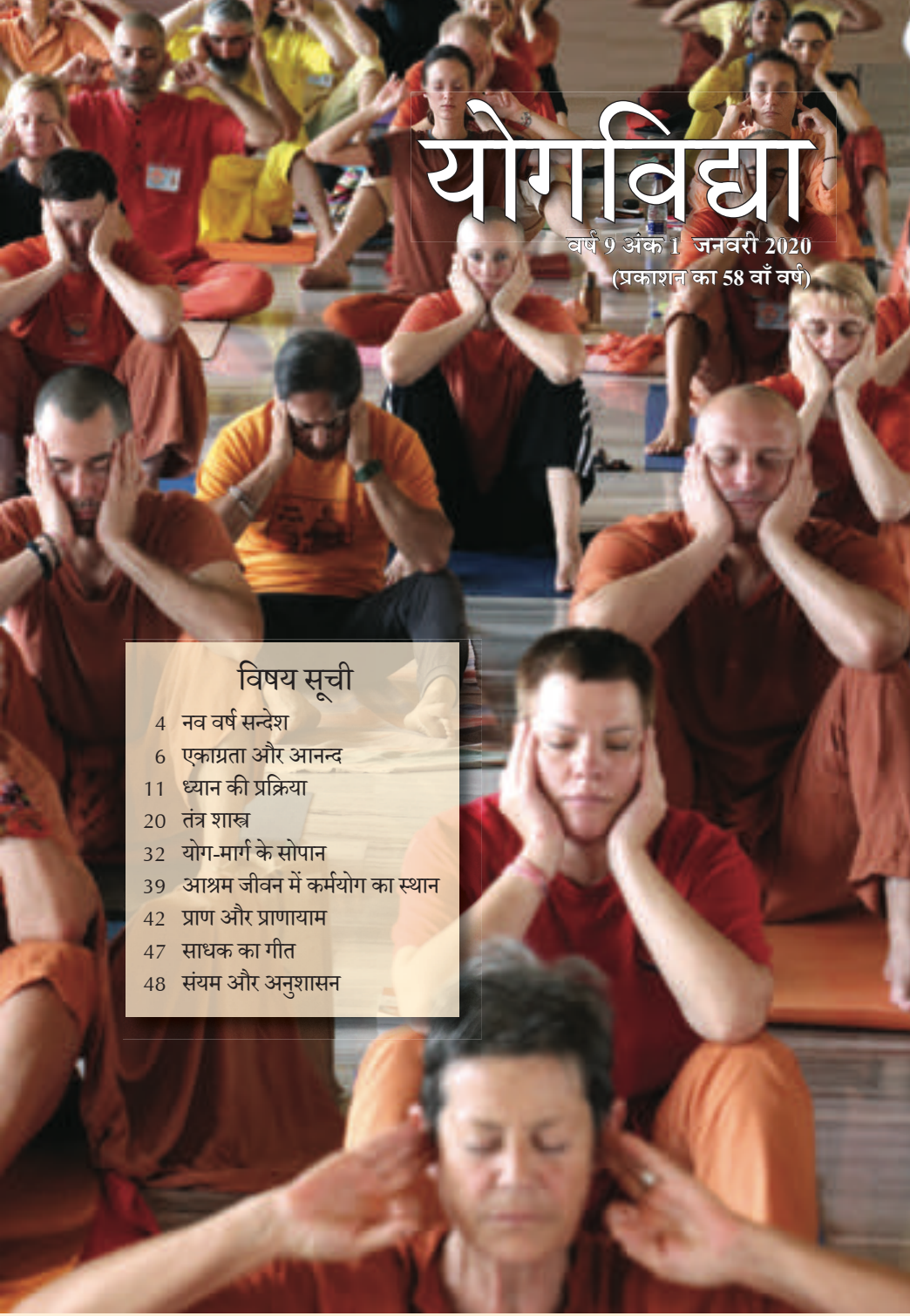

योगविद्या

वर्ष 9 अंक 1 जनवरी 2020
(प्रकाशन का 58 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 नव वर्ष सन्देश
6 एकाग्रता और आनन्द
11 ध्यान की प्रक्रिया
20 तंत्र शास्त्र
32 योग-मार्ग के सोपान
39 आश्रम जीवन में कर्मयोग का स्थान
42 प्राण और प्राणायाम
47 साधक का गीत
48 संयम और अनुशासन

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

नव वर्ष सन्देश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आज और अभी से अपने जीवन का रूपान्तरण प्रारम्भ कर दीजिए। आपके भीतर अध्यात्म के बीज तभी बो दिये जाने चाहिए जब आप युवा हैं। देर मत कीजिए। ईश्वर ने आपको सब प्रकार की सुविधाएँ और सुअवसर प्रदान किये हैं। आपको भगवान के चरणों में पवित्र मन रूपी सुन्दर फूल अभी अर्पित करना चाहिए, न कि बाद में सड़ा-गला दूषित मन। आप अभी पवित्र हैं, बाद में आपको अपने भीतर अनेक दुष्ट प्रवृत्तियाँ दिखलायी देंगी। इसलिए, अभी ही जाग जाइये। दीर्घसूत्रता समय-चोर है। कल कभी नहीं आयेगा। किसी भी चीज को कल तक टालना बहुत अधिक विलम्ब करना है। जो कल पर बात टालकर राहत महसूस करता है, वह आज निरंतर गिरता रहेगा।

'मैं कल जल्दी उठूँगा, मैं कल से प्रार्थना और ध्यान करूँगा,' ऐसा मूर्ख व्यक्ति कहते हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति तो आज ही जल्दी उठता है, आज से ही प्रार्थना और ध्यान आरंभ करता है, आज ही अपने लक्ष्यों के लिए क्रियाशील होता है, और आज ही शक्ति, शान्ति एवं सफलता प्राप्त करता है। इसलिए आप जो कुछ सुबह कर सकते हैं, उसे शाम तक मत टालिए।

सुअवसर आपके द्वार खटखटायें, इसका इंतजार मत कीजिए। सुअवसर की तलाश कीजिए। सुअवसरों का निर्माण कीजिए। एक भी अवसर खाली मत जाने दीजिए। यदि आपको सड़क पर कोई बीमार जरूरतमंद आदमी दिखायी देता है तो उसे अस्पताल पहुँचा दीजिए। इस प्रकार की सेवा के लिए अधिक धन की आवश्यकता नहीं होती। अनेक लोग कष्ट में हैं। उनके भीतर प्रसन्नता का संचार कीजिए, उन्हें आशा का संदेश दीजिए।

गीता-दर्शन इस संसार में सभी के लिए उपयुक्त है। गीता की शिक्षाओं को जीने का प्रयास कीजिए। केवल उस सम्बन्ध में बात करने या व्याख्यान देने से आपको कोई मदद न मिलेगी। आपको पूरी गीता कण्ठस्थ भी हो जाए और आप उस पर घण्टों व्याख्यान भी दे सकते हों, फिर भी ज्ञान के बिना उसका कोई मोल नहीं। ठोस साधना के लिए दो ही चीजें आवश्यक हैं – अनासक्ति और गीता की शिक्षाओं का नियमित अभ्यास।

रात्रि में सोने के पूर्व अपने दिनभर की वाणी, विचारों और कर्मों का पुनरावलोकन कीजिए। पता लगाइये, आज मैंने किस दुर्गुण पर विजय प्राप्त की? आज मैंने किन प्रलोभनों को ठुकराया? किस वृत्ति का विकास किया? किस वृत्ति पर संयम किया? इससे आपके विकास की प्रक्रिया तीव्र होगी।

प्रार्थना एक महान् आध्यात्मिक शक्ति है। आस्था के साथ, भक्तिपूर्ण हृदय से प्रार्थना की जानी चाहिए। प्रार्थना की क्षमता के सम्बन्ध में तर्क मत कीजिए। प्रार्थना अत्यन्त प्रभावशाली होती है। प्रार्थना करते समय अपने हृदय के द्वार पूरी तरह से खोल दीजिए। अपने भीतर किसी प्रकार की धूर्तता या कुटिलता न रखिये।

आपका संकल्प आपके कर्मों में संचालक शक्ति के रूप में अभिव्यक्त हो। आदर्शों पर जीने से चरित्र का निर्माण होता है। इसलिए अभी उठिए और तत्पर हो जाइए। कभी हार को स्वीकार मत कीजिए। एक बार जब प्रकाश की ओर कदम बढ़ा दिया, तो बढ़ते चले जाइये। चाहे इंच-इंच बढ़िए या छलाँग लगाकर, जब तक पूर्ण चरित्र का विकास नहीं हो जाता, आगे बढ़ते जाइये।

अपनी सभी प्रतिकूल परिस्थितियों से ऊपर उठिये। साहस रखिये। कभी निराश मत होइये। आपको सफलता मिलेगी। सही प्रकार से प्रयत्न हो तो दुनिया में ऐसा कुछ भी नहीं जिसे मनुष्य प्राप्त न कर सके। अभी जागिये। अपनी आँखें खोलिए। सद्गुणी व्यक्ति बनिये। अच्छे कर्म कीजिए। भगवान का नाम गाइये। सत्संग कीजिए। सभी बुरी आदतें समाप्त हो जायेंगी। याद रखिये, तीनों लोकों की धन-सम्पत्ति भी व्यर्थ है अगर आप आध्यात्मिक सम्पदा के लिए प्रयत्नशील नहीं हैं।

उदार तथा उन्नत विचारों को आश्रय दीजिए। सभी प्रकार के दु:खों, भयों तथा शोकों का परित्याग कीजिए। आप अपने विचार तथा चरित्र को बदलकर अपने लिए नव-जीवन का निर्माण कर सकते हैं।

ईश्वर आपका पथ प्रदर्शन करे! आप सुख, शान्ति और सम्पन्नता के साथ अपना जीवन जियें!

एकाग्रता और आनन्द

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

स्थायी आनन्द कैसे प्राप्त किया जाए, यह तुम लोग जानते हो, लेकिन अवसर के समय तुम सब कुछ भूल जाते हो। एक अन्धा आदमी दौड़ते हुए बछड़े को पकड़ना चाहता था, पर वह स्वयं गिर पड़ा। किन्तु एक बार यदि वह पुन: दृष्टि पा ले तो कभी-न-कभी बछड़े को अवश्य ही पकड़ लेगा।

उस आनन्द का अनुभव करने तथा उसे बनाए रखने के लिए तुम्हें शक्ति की आवश्यकता है। दैवी आनन्द और सुख को वहन करने के लिए आन्तरिक शक्ति की आवश्यकता होती है। तुम वह आनन्द इसलिए नहीं प्राप्त कर पाते कि तुमने अपने मन को अभी तैयार नहीं किया है। जब तक तुम्हारी इन्द्रियाँ विषयों में रमण करती रहेंगी, तब तक तुम आनन्द नहीं पा सकोगे। जब तक गोपियाँ अपने गृह कार्यों में संलग्न रहेंगी, तब तक वे कृष्ण की बाँसुरी नहीं सुन सकेंगी। 'मैं सच्चिदानन्द आत्मा हूँ' – सिर्फ इतना कहने से काम नहीं चलेगा। तुम एकान्त में आकर इस पर

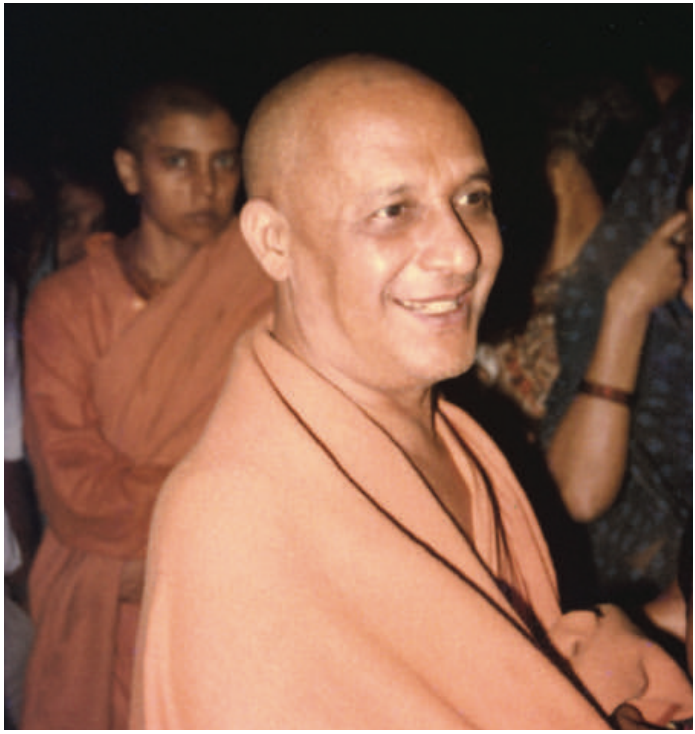

चिन्तन कर सकते हो और यह विश्वास अपने अन्दर ला सकते हो कि 'मैं यह शरीर नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ; मैं घोड़ा नहीं, बल्कि घुड़सवार हूँ।' इससे तुम्हारा विश्वास बढ़ सकता है। पर, केवल यह कहने से कि 'मैं अनन्त आनन्द हूँ' तुम आनन्दमय नहीं बन सकते। आवश्यक योग्यताएँ तुम्हें अवश्य प्राप्त करनी होंगी। अतएव, जब तुम यह कहते हो कि 'मैं आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ', तो तुम्हें वैसे ही रहना भी पड़ेगा। उसका अनुभव भी करना होगा।

तुम जानते हो कि जीव की चेतना के चार स्तर हैं। चेतना का पहला स्तर इन्द्रिय-चेतना है, यानी जागृति। दूसरा स्तर अन्तर्मुख चेतना का है, यानी स्वप्न। तीसरा स्तर सुप्त चेतना का है, अर्थात् सुषुप्ति। चौथी तुरीया अर्थात् दिव्य चेतना है। इसके भी आगे तुरीयातीत, अर्थात् परम चेतना है। योगियों ने चेतना के इन स्तरों को देखा और जाना है।

इन्द्रिय-चेतना की अनुभूति और गति इन्द्रियों तथा मन की क्रियाओं के ऊपर निर्भर है। अन्तर्मुख चेतना का आभास विषयानुगत अनुभवों की प्रतिक्रियाओं के आधार पर होता है। उनका अनुभव अपने अन्दर, मानसिक दृष्टि की सूक्ष्मता के कारण होता है। तुम बड़ी-से-बड़ी वस्तुओं को सूक्ष्म रूप में अपने अन्दर देख सकते हो। स्वप्न में छिपे हुए संस्कार और प्रभावों की प्रतिक्रिया का रूप प्रकट हुआ करता है। स्वप्न संस्कारों के द्वारा प्रकट होते हैं। संस्कार अनुभवों से बनते हैं। अनुभव कर्म से बनते हैं। इस प्रकार पूर्व जन्मों के असंख्य अनुभव स्वप्न में दिखते हैं।

स्वप्न-चेतना से भी सूक्ष्म सुषुप्ति अवस्था है। इसमें व्यक्तिगत चेतना लीन हो जाती है। मन और इन्द्रियों के अकर्म के कारण थोड़ी देर के लिए व्यक्तिगत चेतना अस्तित्वहीन हो जाती है। लेकिन उस अवस्था में भी अहम् की चेतना समाप्त नहीं होती, केवल कुछ देर के लिए इन्द्रिय-चेतना से मुक्त हो जाती है। इसमें पुनरागमन के संस्कार भी रहते हैं। इसमें व्यक्तित्व का पुराना सम्बन्ध यथावत् शेष रहता है। जीव की इस अवस्था में इन्द्रिय-चेतना के संस्कारों का ज्ञान नहीं होता। इसमें लगातार व्यक्तिगत चेतना के पुन: जाग्रत होने की सभी संभावनाएँ बनी रहती हैं।

तुरीय यानी दिव्य चेतना समाधि को कहते हैं। यह वह अग्नि है, जिसमें व्यक्ति के अन्दर के सब सुप्त प्रभाव और संस्कार बिल्कुल जल कर समाप्त हो जाते हैं। न केवल मन और उसकी सभी वृत्तियों का लय होता है, वरन् समाधि अथवा तुरीय में सभी प्राप्त संस्कारों का बिल्कुल नाश हो जाता है। उनके फिर से प्रकट होने अथवा व्यक्ति के पुनर्जन्म की कोई सम्भावना नहीं रह पाती। एक-एक कर सभी आवरण हट जाते हैं। व्यक्तिगत चेतना के क्षेत्र पर क्षेत्र, स्तर पर स्तर पार होते चले जाते हैं। योगी गगन में यौगिक उड़ान भूलोक से भुवर्लोक, फिर सुवर्लोक, महलोक, जनलोक, और तपोलोक तक लेता जाता है, जब तक वह सत्य लोक तक पहुँच नहीं जाता।

योगी धीरे-धीरे अपनी अन्तश्चेतना को जाग्रत करता है। वह इन्द्रिय-चेतना के प्रथम आवरण को चीरता है, और इस प्रकार सत्यलोक में, जो आत्मा के अन्दर है, पहुँचता है। सब योगों का लक्ष्य सत्यलोक है। योगजन्य एकाग्रता, ध्यान और समाधि के द्वारा ही वहाँ पहुँचा जा सकता है। वहीं पर पुरुष अपनी दिव्य महिमा और दिव्य शक्ति के साथ अलग खड़ा रहता है। वहीं पर वह कहता है, 'मैं अनन्त आनन्द हूँ, अनन्त ज्ञान हूँ, मैं शिव हूँ, मैं राम हूँ, मैं सब कुछ हूँ।' यही वह स्थान है जहाँ वह अपने रूप में स्थित रहता है। यही वह परम धाम है। यही सब योगों का अन्तिम अनुभव है। यही वह अवस्था है, जहाँ चेतना द्वैत की सब भावनाओं तथा गलत धारणाओं से मुक्त रहती है।

इसलिए तुम्हारी बोतल इतनी मजबूत रहनी चाहिए कि जब उसमें खौलता हुआ पानी डाला जाये तो वह टूटे नहीं। मैं तुमसे स्पष्ट कहता हूँ कि जब तक तुम ईश्वर के किसी एक रूप पर किसी तरीके से मन को एकाग्र नहीं करोगे, तब तक तुम आत्मा का अनुभव नहीं कर सकते हो। यह बहुत बड़ा सत्य है।

ईश्वर तुम्हारे अन्दर है। मैं नास्तिकों की किसी भी चुनौती का उत्तर दे सकता हूँ। यह तुम्हारी निराकार चेतना का प्रकाश है, जो साकार का रूप धारण कर तुम्हारे सम्मुख आता है। इसी महान् शक्ति के द्वारा महापुरुषों ने समय-समय पर सारे विश्व को हिलाया है। यह सबके अन्दर है। जो वस्तु तुम चाहते हो, वह तुम्हारे अन्दर पहले से है। वह बाहर भी है। किन्तु बाहर से तुम कुछ प्राप्त नहीं कर सकोगे। तुम्हें इसे पाने के लिए अन्दर उतरना पड़ेगा, तभी तुम्हारे सामने यह प्रकट होगी।

ध्यान में जो भी रूप तुम देखते हो, वह तुम्हारे निराकार पुरुष का ही साकार रूप है। स्थूल चेतना के परे सूक्ष्म चेतना है। सूक्ष्म चेतना के परे कारण शरीर की चेतना है। जब मनुष्य जगा रहता है, तब उसकी शक्तियाँ सीमित रहती हैं। जैसे-जैसे उसकी इन्द्रिय शक्तियाँ अन्तर्मुख होती हैं, वैसे-वैसे उसकी शक्तियाँ उतने ही अनुपात में बढ़ती जाती हैं। जब वह इन्द्रिय शक्तियों, इन्द्रियानुभवों और इन्द्रिय-प्रकम्पनों से बिल्कुल रिक्त हो जाता है, तब उसकी सर्वशक्तिमानता, सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता को प्रकट होने का असीमित क्षेत्र प्राप्त होता है, जो अब तक अपवित्रता, विकर्षण और विभ्रम के कारण कुण्ठित थी।

ऊपर वर्णित तीन शक्तियों की अभिव्यक्ति की मात्रा साधक के यौगिक अनुभव पर निर्भर रहती है। जब पूर्ण-योग की प्राप्ति होती है, तभी साधक इन तीन शक्तियों का पूरा-पूरा प्रयोग कर सकता है। ये शक्तियाँ योग की विभिन्न अवस्थाओं में प्राप्त होती हैं। 'आन्तरिक ध्वनि' इन शक्तियों के प्रकटीकरण का रूप है। यह ऐसी अनुभूति है जो सभी प्रकार के अनुभवजनित ज्ञान से परे है। यह भीतर की दुर्दम्य शक्ति है। इसे किसी प्रकार की चेतावनी, सुझाव और सहायता के आधार की आवश्यकता नहीं होती। यह जीवन के प्रत्येक कदम पर साधक की सहायता

करती है। यह साधक को भविष्य की घटनाओं की पूर्वसूचना देती है। 'आन्तरिक आवाज' ईश्वर की आवाज है, मानो स्वर्ग से आ रही हो।

इस प्रकार, यह आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण है, और इसके अन्दर महान् शक्ति है। सन्तों ने इस शक्ति के अजस्र स्रोत को पकड़ने के लिए अनेक तरीके अपनाए हैं। ये तरीके जप, कीर्तन, व्रत एवं तीर्थयात्रा इत्यादि हैं।

एकाग्रता ही उस महान् शक्ति के द्वार को खोलने की कुंजी है। जब तुम किसी विचार या रूप पर मन को एकाग्र कर लेते हो तो ध्यान की अवस्था में पहुँच जाते हो। तुम ईश्वर के भक्त होओ अथवा न होओ, किन्तु ध्यान के द्वारा तुम दिव्य महिमा का अनुभव कर सकते हो।

ईश्वर में विश्वास रखने वाला व्यक्ति ईश्वर के किसी अभीष्ट रूप पर ध्यान करके उसका साक्षात्कार कर सकता है। नास्तिक को भी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए मार्ग मिल सकता है। वह किसी प्रिय फूल अथवा तारे या नासिकाग्र भाग पर या भ्रूमध्य में या हृदय-कमल पर अथवा कहीं पर भी ध्यान कर सकता है। वह किसी अनुभवी नादयोगी की सलाह पर नाद पर भी मन को एकाग्र कर सकता है।

जब तक तुम अपने वास्तिवक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक सदा प्रकृति के सक्रिय और निष्क्रिय प्रभावों से कष्ट पाते रहोगे, और तुम उस महान् आनन्द का, जो तुम्हारी व्यक्तिगत सम्पत्ति है, अनुभव नहीं कर सकोगे। यही तुम्हारा सबसे पहला और मुख्य कर्तव्य है। दिन बीतते जा रहे हैं। तुमने इतने वर्ष व्यर्थ में बिता दिए। तुम चाहे पिता होओ, चाहे माता होओ, चाहे पति होओ, चाहे पत्नी, इस दिव्य मार्ग पर चल सकते हो। यह मार्ग केवल ब्राह्मणों तथा संन्यासियों के लिए ही उपलब्ध नहीं है, बल्कि प्रत्येक सच्चा जीव इस शान्ति और शक्ति के तीर्थ में जा सकता है। पवित्र और सन्त आत्माएँ सदा तुम्हें पग-पग पर पथ-प्रदर्शन के लिए तैयार मिलेंगी। ईश्वर का मार्ग ही एक मात्र कल्याण का मार्ग है। ईश्वरीय विभूति ही केवल उपकारी विभूति है। अन्य सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील तथा क्षणभंगुर हैं। नैसर्गिक सुख को स्थायी रखने का यही एक उपाय है। ईश्वर-प्राप्ति के बिना जीवन व्यर्थ है। योग के बिना यौवन बेकार है। ध्यान के बिना बौद्धिक योग्यता बेकार है। शान्ति के बिना समृद्धि अभिशाप है। ब्रह्मचर्य के बिना मानवता एक परिहास है। संक्षेप में, उस अनन्त जीवन के बिना तुम मृतक-तुल्य हो।

सारांश यह कि ध्यान समाधि की पूर्व आवश्यकता है। ध्यान के लिए एकाग्रता आवश्यक है। एकाग्रता के लिए नाम और रूप का आधार आवश्यक है। इस प्रकार एकाग्रता ध्यान में परिवर्तित होती है, ध्यान ही समाधि और आत्म-साक्षात्कार में। इसी दृष्टिकोण से तुम्हें योग-साधना को देखना है।

तुम मन्दिर में जाकर परम्परा द्वारा प्राप्त सभी धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न कर सकते हो। किन्तु, सिर्फ उसी की सहायता से 'अन्तर्कक्ष' के द्वारों को नहीं खोल

सकोगे। अधिक-से-अधिक वे तुम्हारी मनोवैज्ञानिक स्थिति को सन्तुलित रख सकेंगे। तुम चाहे कितनी ही देर पूजा में बैठो, किन्तु एकाग्रता के अभाव में तुम्हारे सारे प्रयत्न निष्फल होंगे। बन्दूक से गोली छोड़ने के पूर्व निशाना साध लेना सदा अच्छा होता है। हवा में गोली छोड़ने से कोई फायदा नहीं। इसलिए, अब तुम समझ गए होगे कि एकाग्रता का गहरा अभ्यास बहुत आवश्यक है। तभी तुम वास्तविक आनन्द का अनुभव कर सकोगे।

मैं तुम्हारे पूर्व के विश्वासों को आघात पहुँचाना तथा तुम्हें हतोत्साह करना नहीं चाहता। तुम अपने प्रिय देवता का नाम जिस तरह चाहो ले सकते हो, जहाँ चाहो और जब चाहो ले सकते हो। किन्तु उसे भाव के साथ, तीव्र स्मरण के साथ तथा अद्वैत विश्वास के साथ लो। उसे उसी प्रकार लो और करो, जैसे तुम अपने किसी बहुत जरूरी और महत्त्वपूर्ण कार्य को करते हो। उसका नाम उसी प्रकार से लो, जैसे तुम अपने प्रेमी अथवा नवविवाहिता पत्नी को याद करते हो। मैं तुम्हारे सामाजिक और परम्परागत विश्वासों के बीच में नहीं आना चाहता। मैं तुम्हें केवल पुनर्जागरण का नया तरीका बतला रहा हूँ।

एकाग्रता एक गुण है जिसका उपयोग व्यवसाय, कार्यालय अथवा किसी भी क्षेत्र में किया जा सकता है। एकाग्रता से व्यक्तित्व का विकास होता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने में एकाग्रता से स्थायी मदद मिलती है।

एकाग्रता से ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में आविष्कार के लिए अन्तर्ज्ञान की सहसा झलक मिला करती है। इससे तीव्र और दूरदर्शी दृष्टि की योग्यता प्राप्त होती है। एकाग्रता के शक्तिशाली माध्यम से गुप्त-शक्तियों के खजाने का अनावरण होता है।

अन्त में, मैं तुम्हारे दिमाग में इस बात को भर देना चाहता हूँ कि सुख और आनन्द की प्राप्ति का सच्चा और सही मार्ग खोई हुई दृष्टि को योग-साधना के द्वारा पुन: प्राप्त करना ही है। अपने ईश्वर को जगाओ। ओ शिव! अन्दर के कैलास से जाग उठो, और मानसरोवर के वक्ष पर नृत्य करो! मैं तुम्हें ही अपना शिव, अपनी अन्तर्ज्योति और अपना राम मानता हूँ।

ध्यान की प्रक्रिया

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

ध्यान एक ऐसी स्थिति है, ऐसी अनुभूति है जो किसी की समझ में आती नहीं, लेकिन हर व्यक्ति इसे करना चाहता है। हर व्यक्ति ध्यान की अवस्था में एक उच्च अनुभव को प्राप्त करना चाहता है, और उसके लिए प्रयास भी करता है। अपने साथ हठ भी करता है। बहुत लोग आते हैं, कहते हैं, 'स्वामीजी, हम ध्यान तो इतने सालों से कर रहे हैं। लेकिन हमारा मन एकाग्र नहीं होता, चंचलता बहुत रहती है, हम आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं, क्या करें?' अगर ऐसे व्यक्तियों से पूछा जाए कि आप किस प्रकार का ध्यान करते हैं तो कहते हैं, 'हम बैठकर मन को विचार-शून्य बनाने और अपने इष्ट में लगाने का प्रयास करते हैं, लेकिन लगता नहीं, कभी इधर की बात याद आती है, कभी उधर की। समझ में नहीं आता कि हमारी प्रगति क्यों नहीं हो रही है।'

ये विचार साधकों के ही नहीं, बल्कि उन सभी लोगों के हैं जिन्होंने अपने जीवन में ध्यान का प्रयास किया है, चाहे एक बार ही सही। लोग ध्यान का अर्थ लगाते हैं कि यह अपने मन को किसी एक बिन्दु में केन्द्रित कर देना है। लेकिन वास्तव में यह ध्यान की अवस्था नहीं है। न यह ध्यान की प्रक्रिया है। न ही इस प्रकार का प्रयास ध्यान की परिभाषा के समीप आता है। बहुत बार कहा जा चुका है कि सर्वप्रथम अपने आपको समझो, और जब समझोगे तभी मन केन्द्रित होगा, एकाग्र होगा। तैरना तो सीखा नहीं है, लेकिन पानी में कूद पड़े हैं तैरने के लिए, और हाथ-पैर मारने को तैरना कह देते हैं। और जब थोड़ी गहराई में जाते हैं तो डूबने लगते हैं, फिर चिल्लाते हैं, 'हाय! बचाओ!' यह तैराकी नहीं है।

चेतना का व्यापक स्वरूप

ध्यान के विषय में योगशास्त्र कहता है कि जिस प्रकार एक शुद्ध स्फटिक को जिस किसी रंग के वस्त्र के ऊपर रख देते हैं, उसमें वही रंग दिखलायी देता है, ठीक इसी प्रकार की स्थिति ध्यान में मनुष्य को प्राप्त होती है। योग दर्शन में कितना सुन्दर उदाहरण दिया गया है – स्वच्छ, परिशुद्ध, पारदर्शक स्फटिक। जब आप ध्यान करते हैं तो आपके मन में क्या इसी प्रकार की स्पष्टता रहती है? नहीं। ध्यान की प्रथम अवस्था में यह प्रयत्न होना चाहिए कि हमारा मन स्फटिक की तरह शुद्ध हो जाए, निर्मल हो जाए, दोषरहित हो जाए। और जब मन दोषरहित हो जाता है तभी ध्यान लगता है, उसके पहले नहीं।

एक उदाहरण देता हूँ। वेदों में कहा गया है – 'खं ब्रह्म'। इसका अर्थ होता है कि आकाश ब्रह्म है। आकाश को ब्रह्म-रूप क्यों माना गया? इसलिए कि आकाश

ही पंच महाभूतों में एक ऐसा महाभूत है, एक ऐसा तत्त्व है जिसमें अन्य सभी तत्त्वों का विस्तार संभव है। अगर आकाश का अभाव हो जाए तो सृष्टि में किसी तत्त्व का विस्तार नहीं होगा। आप पूछेंगे, इसका प्रमाण क्या है? किसी बिल्डिंग को देख लीजिए, इसका विस्तार कहाँ हुआ है? पृथ्वी पर तो उत्पन्न हुआ, लेकिन विस्तार हुआ है आकाश में। सृष्टि के चाहे किसी रूप को देख लीजिए, आप देखेंगे कि सभी रूपों का विस्तार आकाश में ही होता है। आकाश ही एक ऐसा तत्त्व है जिसमें सभी भूत, सभी तत्त्व समाए हुए हैं। यह विशाल, व्यापक, अव्यक्त, निराकार है। इसका कोई स्वरूप नहीं होता, इसकी कोई सीमा नहीं होती। इसे ही ब्रह्म माना गया है। वायु भी आकाश में अनुभव की जाती है। अग्नि के ताप का अनुभव आकाश में ही होता है, और पृथ्वी भी इस आकाश के एक अंग के रूप में दिखलायी देती है।

अब इसी वर्णन की तुलना आप अपनी चेतना से कीजिए। देखिए कि आपकी चेतना भी इस आकाश की तरह व्यापक, विशाल और निर्विकार है। चेतना में किसी प्रकार के गुण-दोष नहीं होते। यह तो मात्र एक ऐसी स्थिति है, एक ऐसी अवस्था है, एक ऐसी शक्ति है जहाँ पर व्यक्त अवस्थाओं की सम्भावना निहित है। चेतना में किसका विस्तार होता है? महत् तत्त्व का। महत् तत्त्व क्या है? मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार जिन्हें 'मन:चतुष्टय' भी कहते हैं। मन:चतुष्टय के भीतर अनेक प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती हैं। ये तरंगें चेतना की स्थिरता को प्रभावित करती हैं। जब ये तरंगें उठती हैं, जब इनके साथ विषयों की धूल उड़ती है, तब वही स्थिर, अचल, विशाल आकाश धुँधला दिखलायी देता है। लेकिन आकाश तत्त्व, चेतन तत्त्व विषयों की इस धूलि से, बुद्धि-विलास के भवन से प्रभावित नहीं होता। ये सब बनते हैं, बिगड़ते हैं। कामनाएँ उत्पन्न होती हैं, समाप्त होती हैं। अहंकार उत्पन्न होता है, समाप्त होता है। यह क्रम तो अनादि काल से चला आ रहा है।

ध्यान की अवस्था में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का अनुभव नहीं होता। इस अवस्था में एक ही अनुभव को प्राप्त करने के लिए पहले प्रयत्न किया जाता है कि हमारा मन, अहंकार, चित्त और बुद्धि शान्त एवं निर्मल हो जाए। इस मन:चतुष्टय को शान्त और निर्मल करने के लिए, इनके भीतर उत्पन्न उद्विग्नता को समाप्त करने के लिए अन्य प्रकार के अभ्यासों को करना पड़ता है, लेकिन सामान्य रूप से हम कह देते हैं कि हम ध्यान कर रहे हैं।

स्वयं से समझौता

ध्यान तो एक ऐसी अनुभूति है जिसे आज तक हममें से किसी ने प्राप्त नहीं किया है। यह तो एक ऐसी अवस्था है जिसे हम अपनी भौतिक मानसिकता के साथ प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि हमने सर्वप्रथम अपने से समझौता नहीं किया है। जब आप मन्त्र जप में, या अपने इष्ट में स्वयं को एकाग्र करने का प्रयत्न करते हैं,

तो इसके पूर्व क्या अपने आपसे समझौता किया है कभी? नहीं। और समझौता न करने से क्या होता है? आन्तरिक विरोध एवं दमन होता है, अवरोध उत्पन्न होते हैं। जब मानसिक अवस्था में विरोध हो रहा है, अवरोध उत्पन्न हो रहे हैं, तब उसे हम ध्यान किस प्रकार से मानें? आप घण्टों आँख बन्द करके बैठ सकते हैं, अपने को भूल सकते हैं, भौतिक जगत् से अपनी चेतना को हटा सकते हैं, लेकिन वह ध्यान की अवस्था नहीं कहलाती, क्योंकि अभी तक संघर्ष, विरोध और दमन की प्रक्रिया चल रही है।

गुरु जी एक जंगली घोड़े की कहानी सुनाया करते थे। आपने कभी किसी जंगली घोड़े पर बैठने का प्रयास किया है? एक बार चढ़कर देखिए क्या होता है। लगाम लगाने का प्रयत्न कीजिए, क्या होता है? मालूम पड़ेगा वह तो अनुशासित नहीं है। अगर घोड़े पर सवारी करनी हो तो पहले घोड़े से मित्रता करनी होती है, उसके समीप जाना पड़ता है, उससे एक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, ताकि वह आपको पहचाने कि आप कौन हैं। और आप उस घोड़े को जान सकें कि उसकी चाल किस प्रकार की है, स्वभाव किस प्रकार का है। जब दोनों में आत्मीयता हो जाती है, तभी ध्यान प्रारम्भ होता है, उसके पहले नहीं।

देखिए, दो अवस्थाएँ हैं। एक है सामीप्य की और दूसरी है सायुज्य की। सामीप्य का अर्थ होता है नजदीक आना, और सायुज्य का अर्थ होता है एक हो जाना। आपने देखा ही होगा कि जब बरसात के दिनों में हम दीया या बत्ती जलाते हैं तो बहुत-से कीट-पतंगे उसके समीप आकर उस पर मंडराने लगते हैं, और कुछ तो ऐसे भी होते हैं जो उसके प्रकाश की ओर आकृष्ट होकर उसमें जलकर मर जाते हैं। प्रकाश की ओर जो आकर्षण है उसे कहते हैं सामीप्य, और उस प्रकाश में जलकर नष्ट होना, उस प्रकाश से एक हो जाना, वह है सायुज्य। आपने सामीप्य को प्राप्त करने की कोशिश भी नहीं की, और चाहते हैं सायुज्य! इसीलिए तो कोई ध्यान नहीं कर पाता। एक बात और याद रखिए कि ध्यान सीधे अद्वैत नहीं होता, कभी नहीं।

ध्यान की शुरुआत होती है त्रैत से, फिर इसकी परिणति होती है द्वैत में, और फिर अद्वैत में। त्रैत, द्वैत और अद्वैत – यह ध्यान की प्रक्रिया है। अगर आप सोचें कि ध्यान करने से सीधे ईश्वर के पास पहुँच जाएँगे तो सम्भव नहीं है। यह आप स्वयं को धोखा दे रहे हैं, और अपना समय नष्ट कर रहे हैं। महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्रों में ध्यान को सातवें अंग के रूप में माना। अगर ध्यान इतना सहज होता, तो सबसे पहले उसे ही रख देते। अष्टांग योग की आवश्यकता ही नहीं होती। दो अंगों से ही काम चल जाता, ध्यान और समाधि।

ध्यान और समाधि की आवश्यकता भी नहीं होती, अगर हम समझौता कर आए होते इस संसार में अपने साथ, अगर हमें यह जानकारी होती कि हमें संघर्ष नहीं, विरोध नहीं, बल्कि समझौता करना है। और यह समझौता होता किस प्रकार का है? समझौते की प्रक्रिया है – प्रत्याहार और धारणा। प्रत्याहार का अर्थ होता है अपने को समेटना। हमारे जीवन की जो बहिर्मुखता है, उसे एक बिन्दु की ओर लाना। हमारे जीवन की जो छिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं, उन्हें समेटकर एक बिन्दु में केन्द्रित करना। यह कैसे होता है? आँखों को बन्द करके विचारों को देखने से, बाहर की ध्वनियों से अपने मन को हटाने से।

प्रत्याहार, धारणा और ध्यान

प्रत्याहार के सम्बन्ध में एक दृष्टान्त दिया जाता है कि जिस प्रकार कछुआ अपने कवच के भीतर सभी अंगों को समेटता है, ठीक उसी प्रकार हमें भी अपनी चेतना के कवच के भीतर इन्द्रियों को खींचना है। चेतना से इन्द्रियों का विस्तार हुआ है कर्मेन्द्रियों के रूप में, ज्ञानेन्द्रियों के रूप में। चेतना से मन का विस्तार हुआ है मन:चतुष्टय के रूप में। अब जो विस्तार हो चुका है, उसे वापस लाना है कवच के भीतर। और कवच के भीतर लाने का अर्थ एकाग्रता नहीं है। एक उदाहरण देता हूँ – यदि बिस्तर छोटा है तो हम उसमें किस प्रकार सोएँगे? अपने शरीर को समेट कर सोएँगे, या फैलाकर? अगर फैलाकर सोएँगे, तो क्या होगा? न इधर के रहेंगे न

उधर के, सन्तुलन नहीं रहेगा। अगर दो फुट x चार फुट के बिस्तर में छ: फुट का आदमी सोना चाहे तो उसे अपने अंगों को समेटकर सोना पड़ेगा।

समेटकर सीमा के अन्दर लाने की जो प्रक्रिया है, उसे प्रत्याहार कहते हैं। इन्द्रियों को चेतना की व्यापक सीमा में ले आना है, जहाँ पर उनकी बहिर्मुखता और चंचलता पूर्णरूपेण समाप्त हो जाए, और वे एक अनुशासित, नियमबद्ध ढंग से इस सीमा के अन्दर अपना कार्य करें। जब हम अपनी इन्द्रियों को समेट लेते हैं, तब सन्तुलन की प्राप्ति होती है, चंचलता एवं विक्षिप्तता समाप्त होती है। और जब हमारी आन्तरिक चंचलता समाप्त हो जाती है, तब मन एक बिन्दु में केन्द्रित होने लगता है। एक उदाहरण देता हूँ आपको। मान लीजिए आप एक विशाल बरगद के पेड़ पर चढ़कर उसके पत्तों एवं टहनियों के बीच छुपे हुए हैं, और आपको अब धरातल पर आना है, तो आप क्या करेंगे? प्रयास करेंगे कि टहनियाँ पकड़-पकड़कर उसके तने तक आ जाएँ, और फिर तने का सहारा लेकर नीचे धरातल पर आ जाएँ।

अभी हम लोगों की जो अवस्था है, वह ठीक इसी वृक्ष की तरह है। जीवन की सभी शक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं। इन्द्रियाँ बहिर्मुखी हैं, मन:चतुष्टय बहिर्मुखी है। अब एक-एक को पकड़ कर लाना है, और तने के पास जाना है। तो यह जो तने के पास आने की प्रक्रिया है, इसे कहते हैं प्रत्याहार। और तने को पकड़ कर नीचे उतरने की जो प्रक्रिया है उसे कहते हैं धारणा। और जब धरातल पर आकर एक ठोस भूमि पर खड़े हो जाते हैं तो उसे कहते हैं ध्यान। इसलिए इस बात को याद रखिए कि ध्यान की अवस्था में मन के साथ संघर्ष नहीं होता। सीधी-सी बात है, अगर मन विचलित है तो ध्यान लगेगा ही नहीं। अगर आपके स्फटिक में कोई दूसरा रंग पहले से चढ़ा हुआ है, और आप चाहें कि वह रंग उसमें दिखलाई न दे, मणि एकदम स्वच्छ दिखायी दे, तो वह तो सम्भव है नहीं, क्योंकि हम अपने भौतिक मन को जहाँ ले जाते हैं, वह उसी रंग में रंग जाता है।

हमारे पुराणों में कथाओं के माध्यम से शिक्षा दी गयी है – 'जिस रंग में परमेश्वर राखे उसी रंग में रहना रे बन्दे, उसी रंग में रहना।' खुद का रंग नहीं चढ़ाना। हम लोग तो अपनी वृत्तियों, इच्छाओं, कामनाओं और वासनाओं का रंग चढ़ाने लगते हैं, और ये सब रंग चढ़ाकर कहते हैं कि हम एकदम साफ हैं, तुम आ जाओ। लेकिन यह कभी होता नहीं है। हम एकदम साफ हैं, यह सोचना भ्रामक है। हम पवित्र नहीं, हम निर्मल नहीं, हम शान्त नहीं, हम चैतन्य नहीं। हम चंचल हैं, हमारा मन उत्पाती है, वृत्तियाँ अनियन्त्रित हैं, विचारों पर हमारा नियन्त्रण नहीं, कहीं पर मन लगता नहीं। पूजा करते हैं तो मन जाता है स्टोव की तरफ कि उसपर दूध रखा है। मन्दिर में जाते हैं शीश नवाने के लिए, पर ध्यान रहता है जूते में कि कोई भलामानुस उसे उठाकर न ले जाए। किसी काम से बाहर जाते हैं तो ख्याल बना रहता है कि मैंने अपनी गाड़ी में ताला लगाया है या नहीं। हम स्वयं को एक दिशा नहीं दे पाते।

आत्म-विश्लेषण

योग शास्त्र कहता है कि अगर स्वयं को दिशा देनी है तो सबसे पहले अपने साथ समझौता कर लो। स्वीकार कर लो कि ठीक है, मेरे भीतर कुछ अवगुण हैं। मेरे भीतर ये दोष हैं। मेरे भीतर ये महत्त्वाकांक्षाएँ हैं, ये इच्छाएँ हैं, ये कमियाँ हैं, ये आवश्यकताएँ हैं। इन्हें एक बार देख लो, जान लो, समझ लो। अपने जीवन की सभी अवस्थाओं को एक बार आँखें खोलकर देख लो और भौतिक आँखों को नहीं, आन्तरिक आँखों को खोलकर देखो। जब तक तुम अपने को नहीं जान सकते, तब तक दूसरों को क्या जानोगे? परमात्मा को क्या जानोगे? क्योंकि जब तक हम अपने को नहीं जानते तब तक सोचते हैं कि परमात्मा हमसे अलग है, दूर है, हमारे बाहर है। लेकिन जिस दिन हम अपने को जान पाते हैं, और तत्पश्चात् स्वयं को केन्द्रित कर पाते हैं, उस दिन परमात्मा साक्षात् प्रकट हो उठते हैं।

इसलिए सबसे पहले आत्म-विश्लेषण, आत्म-निरीक्षण की अवस्था को लाना है। यह काम तो आप बैठे-बैठे भी कर सकते हैं। अगर किसी के साथ बहस हो जाती है, तो वह आपकी प्रतिक्रिया के रूप में होती है। जब आप एकान्त में बैठें, चाय पीने या खाना खाने बैठें, तो एक बार सोच लें कि बहस क्यों हुई, क्योंकि ताली कभी एक हाथ से नहीं बजती। दोष दूसरे का ही नहीं, स्वयं का भी होता है। स्वयं की भी एक प्रतिक्रिया होती है। अगर कोई हमें पागल कहे, तो क्रोध के रूप में हमारी प्रतिक्रिया व्यक्त होती है। यह प्रतिक्रिया महत् तत्त्व की अशुद्धि के कारण होती है। हो सकता है यह अशुद्धि अहंकार में है, जो घमण्ड के रूप में सामने आ रही है। हो सकता है यह बुद्धि में हो, जिसके कारण हम उस व्यक्ति के विचारों से तालमेल न बैठा पा रहे हों। हमारा विश्लेषण दूसरे व्यक्ति के विश्लेषण से मेल न खा रहा हो, परस्पर विरोध हो रहा हो। यह है महत् तत्त्व की अशुद्धि।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अगर देखा जाए तो एक चीज स्पष्ट रूप से सामने आती है कि हम परिस्थितियों के दास हैं, अपनी उच्चाकांक्षाओं एवं अहंकार के दास हैं। हम इन सभी से प्रभावित होते हैं। मान लीजिए, किसी को हम कहें कि आज तुम्हें प्रवचन देना है, लेकिन अधिक भीड़ के कारण उसका प्रवचन नहीं हो पाता। तो वह कहेगा, 'स्वामीजी ने तो मुझे कहा था कि प्रवचन देना है। देखो, मैंने तैयारी कर ली और मुझे अवसर नहीं मिला।' और बुरा मान बैठेगा। इसमें समझौता हुआ? नहीं हुआ, बल्कि इसमें अहंकार सामने आ जाता है कि मुझे अवसर नहीं मिला। इस तरह की प्रतिक्रिया तो होती ही है। इसे जानना, इसे देखना ही आत्म-विश्लेषण है और यह स्थिति ध्यान में पहला चरण है। यह प्रत्याहार की ही अवस्था है, प्रत्याहार का ही अंग है। इसके बिना प्रत्याहार सिद्ध नहीं होता। मन में किस प्रकार की तरंगें उत्पन्न हो रही हैं, कौन-से विषय हमें अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं, जब इतना ही नहीं मालूम होगा तो एकाग्रता कहाँ से होगी।

ध्यान में त्रैत की अवस्था

योग शास्त्र बतलाता है कि जब तुम ध्यान करने बैठते हो तो उस समय तीन चीजों का बोध होता है। पहला, मैं कर्त्ता हूँ, ध्याता हूँ। लक्ष्य, जो मुझे प्राप्त करना है, वह ध्येय है। और जिस प्रक्रिया को मैंने अपनाया है वह ध्यान की प्रक्रिया है। ध्याता, ध्यान और ध्येय – इन तीनों का समग्र ज्ञान होना जरूरी है।

बहुत बार लोग आते हैं, कहते हैं, 'स्वामीजी, ऐसा क्यों होता है कि मन दूसरी ओर भाग जाता है।' हम कहते हैं, 'तुम ही इसे भागने देते हो, इसलिए भागता है।' आप घर से यहाँ आए हैं। रास्ते में अनेक मोड़ आए थे कि नहीं? आप चाहते तो वहाँ रुक सकते थे, वहाँ रुक कर वहाँ के दृश्य देख सकते थे। यहाँ आने की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन आपका एक ध्येय था कि हमें यहाँ पहुँचना है, इसलिए आप रास्ते में रुके नहीं। ठीक इसी प्रकार का एक लक्ष्य जब मनुष्य के सामने स्पष्ट हो जाए, तब मन इधर-उधर नहीं भागता।

अत: सबसे पहले लक्ष्य को स्पष्ट करना है। जब लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है तब फिर चाहे जो हो, कितनी भी बाधाएँ आएँ, कितने ही दृश्य दिखायी दें, सामने ध्येय ही रहता है, और यह ज्ञान रहता है कि मैंने एक प्रक्रिया को अपनाया है। मान लीजिए, आप गाड़ी से यहाँ आ रहे हैं, बीच रास्ते में गाड़ी से उतर कर पैदल आने लगेंगे? या बीच रास्ते में अपनी गाड़ी को रोक कर, उसमें ताला लगाकर बैलगाड़ी पर चढ़कर यहाँ आएँगे? नहीं। अर्थात् प्रक्रिया बदली नहीं जाती। आरम्भ से अन्त तक, घर से यहाँ तक आप एक ही गाड़ी से, एक ही माध्यम से आए हैं। चाहे वह स्कूटर हो, रिक्शा हो, साइकिल हो, या मोटर हो। एक ही मार्ग आपने पकड़ा है।

प्रक्रिया का अर्थ होता है कि ध्येय को प्राप्त करने के लिए जिस मार्ग को हमने अपनाया है, उसी पर चलना है। जो व्यक्ति गाड़ी में बैठता है, उसे मालूम रहता है कि मैं गाड़ी में बैठा हूँ। वह स्वयं के प्रति अचेत नहीं, सचेत है। उसे मालूम है कि मुझे गाड़ी ठीक से चलानी है। ध्याता, जो मैं हूँ, उसका भी मुझे ज्ञान है।

अत: ध्याता, ध्येय और ध्यान, यह है त्रैत की अवस्था। जैसे-जैसे आप लक्ष्य के समीप पहुँचते हैं, त्रैत की अवस्था द्वैत में बदल जाती है। आप यहाँ आए हैं, गाड़ी बाहर रुकी है, प्रक्रिया में विश्राम। अब बचते हैं केवल दो – ध्याता और ध्येय। प्रक्रिया में विश्राम का अर्थ है कि सान्निध्य की एक ऐसी अवस्था आने लगती है कि मैं भूलने लगता हूँ कि मैं कुछ कर रहा हूँ। एक बार जब रिवॉल्वर से गोली निकल जाए, तो फिर निशाना साधने की आवश्यकता नहीं होती। निशाना तो तभी लगाना पड़ता है जब गोली चलानी हो। लेकिन एक बार जब घोड़ा दबा दिया, और रिवॉल्वर से गोली निकल गयी, फिर तो उसे कोई नहीं रोक सकता। इसे इस प्रकार भी ले लीजिए – रिवॉल्वर, गोली और लक्ष्य। एक बार गोली निकली कि रिवॉल्वर का काम समाप्त। गोली तो जाएगी ही लक्ष्य की ओर, माध्यम का काम समाप्त, विधि का काम समाप्त। यह अवस्था है ध्याता और ध्येय की। इसमें सान्निध्य की दूसरी अवस्था आती है, हम लक्ष्य के प्रभामण्डल में प्रवेश करते हैं। और तब द्वैत की समाप्ति होती है, अद्वैत की शुरुआत होती है।

त्रैत की अवस्था है प्रत्याहार, द्वैत की स्थिति है धारणा और अद्वैत की अवस्था है ध्यान। जब मैं रहा तो तुम नहीं थे, लेकिन जब मैं नहीं तो तुम-ही-तुम हो – यह अद्वैत की अवस्था है। द्वैत में मैं हूँ, लेकिन तुमसे भिन्न हूँ। अभिन्न नहीं हूँ, एक नहीं हूँ। लेकिन जब मैं नहीं रहता, तब क्या रहता है? एक नमक की गुड़िया यह जानने के लिए समुद्र में जाती है कि समुद्र कितना गहरा है, और डुबकी लगाती है। वह समुद्र में विलीन हो जाती है, स्वयं को खो देती है। यह है द्वैत से अद्वैत में परिणति।

इसलिए आप ध्यान करने से पूर्व ध्यान की प्रक्रिया को समझ लीजिए। केवल आँखों को बन्द करके अपने साथ संघर्ष नहीं करना है। यह चिन्ता नहीं करनी है कि मेरा मन नहीं लग रहा है। सीधे सातवीं सीढ़ी में कदम रखने से कुछ लाभ नहीं है। शनै: शनै: बढ़ते जाइए। बढ़ने की प्रक्रिया नहीं मालूम, तो किसी योगाभ्यासी से पूछ लीजिए कि मुझे क्या करना होगा, कैसे आगे बढ़ना होगा। उसे यह मत कहिए कि मुझे यह कठिनाई है, वह कठिनाई है, क्योंकि वह तो जानता ही है।

बिना चिन्ता किए, स्वयं को और दूसरों को परेशान न करते हुए एक मार्ग पर बढ़ते जाइए, तभी सफलता मिलेगी। यही ध्यान की प्रक्रिया है।

दैनिक साधना

इसकी शुरुआत कैसे हो? देखिए, दिन में चौबीस घण्टे होते हैं, उसमें से आप कितना समय आत्मोत्थान के लिए देते हैं? शून्य मिनट। क्या दस मिनट नहीं दे सकते? अगर दे सकते हैं तो ध्यान से सुनिए, मैं स्पष्ट निर्देश दे रहा हूँ कि रात्रि को जब घर की बत्तियाँ बुझ जाएँ, जब सब सोने चले जाएँ, तब बिस्तर से उठ जाइए, और दस मिनट के लिए बैठ जाइए। कहिए कि यह दस मिनट का समय मैं आत्मोत्थान के लिए दे रहा हूँ। इस समय मेरा सम्बन्ध न इस शरीर से है, न शरीर के अनुभवों से है, न शरीर के सुख-दु:ख से है। इस समय मेरा सम्बन्ध न मन से है, न मन की अनुभूतियों से है, और न मन की सुख-दु:ख की अवस्था से है। इस समय मेरा सम्बन्ध मात्र अपनी आन्तरिक चेतना से है। जिस चेतना में मन का विस्तार होता है, उसी से मेरा सम्बन्ध है। अपनी सजगता को शरीर और मन से हटा दीजिए, केवल भ्रूमध्य में एक ज्योति की कल्पना कीजिए, और उस पर अपने मन को केन्द्रित कर दीजिए। सब कुछ भूलकर ज्योति पर ही अपने ध्यान को केन्द्रित रखिए। यह ख्याल भी न रहे कि मैं यह क्रिया कर रहा हूँ। आप स्वयं देखेंगे कि सर्वप्रथम यह अनुभव काल्पनिक होगा, लेकिन जैसे-जैसे आन्तरिक एकाग्रता में वृद्धि होगी, वैसे-वैसे ज्योति का प्रतीक भृकुटि में धीरे-धीरे स्पष्ट होगा। कभी एक क्षण के लिए आएगा, फिर दो, फिर तीन, फिर गायब हो जाएगा, पुन: दिखायी देगा, फिर गायब हो जाएगा। लेकिन एक दिन ऐसा समय आएगा कि यह निरन्तर भ्रूमध्य में दिखायी देगा। मन्त्र के माध्यम से उस प्रकाश में अपनी चेतना को एकाकार करने का प्रयत्न कीजिए। अगर आपका निजी गुरु मन्त्र नहीं है, तो ॐ मन्त्र का प्रयोग किया जा सकता है। ॐ को तो अक्षर ब्रह्म का निराकार स्वरूप माना गया है। ॐ मन्त्र का ख्याल कीजिए, और इसके स्पन्दन को पूरे शरीर एवं मन में व्याप्त अनुभव कीजिए।

इतना ही कीजिए। आप स्वयं देखेंगे कि इन्द्रियों एवं मन से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने के पश्चात् आपका दृष्टिकोण, आपका व्यक्तित्व बदलता है या नहीं, सकारात्मक रूप लेता है या नहीं। अवश्य लेगा, हम आपको इस बात की गारंटी दे रहे हैं। लेकिन इतना अवश्य कीजिए कि रात को दस मिनट का समय अपने को संसार से अलग करने के लिए, और आत्मानुभूति को प्राप्त करने के लिए दीजिए। और कुछ नहीं करना है, न इष्ट के बारे में सोचना है, न अन्य किसी चीज के बारे में। नि:स्वार्थ भाव से, निष्काम भाव से शान्त बैठकर अपने को ज्योति के अनुभव में केन्द्रित कर दीजिए, तभी आपका ध्यान सिद्ध होगा, तभी आपका मन स्फटिक मणि की तरह स्वच्छ और निर्मल होगा।

तंत्र शास्त्र

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

तंत्र का उद्देश्य इस सारगर्भित शब्द में ही निहित है। तंत्र की उत्पत्ति संस्कृत के दो शब्दों से हुई है – *तनोति* अर्थात् तानना या विस्तार करना और *त्रायते* अर्थात् स्वतंत्र या मुक्त करना। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तंत्र मन का विस्तार और अन्तर्निहित प्रसुप्त ऊर्जा को मुक्त करने की विधि है। तंत्र को समझने से पहले हमें यह समझना होगा कि वास्तव में मन के विस्तार और ऊर्जा के मुक्त होने का क्या अभिप्राय है।

आन्तरिक और बाह्य जगत् से सम्बद्ध हमारी अनुभूतियाँ अत्यन्त सीमित होती हैं। हम अपनी इन्द्रियों के माध्यम से केवल देख, सुन, सूँघ सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं या स्वाद पा सकते हैं। यदि हमारी कोई इन्द्रिय काम करना बन्द कर दे तो उससे सम्बद्ध अनुभव तथा ज्ञान बाधित हो जाते हैं। इस तरह हमारा ज्ञान पूर्णत: इन्द्रियों पर निर्भर करता है। यह हमारे जीवन को सीमित करने वाला पक्ष है, क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान देश, काल और वस्तु की सीमाओं में बँधा हुआ होता है।

देश, काल और वस्तु वैचारिक रूप में मानव मन में स्थित होते हैं। यदि मनुष्य का मन न हो तो काल या देश या वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं होता और इसके विपरीत यदि ये तीनों नहीं हों तो मानव मन का भी कोई अस्तित्व नहीं बचता है। मन के ये तीन वैचारिक रूप सीमाबद्ध हैं और इन्हें असीमित या अक्षय ज्ञान का स्रोत नहीं माना जा सकता। जब तक हम इन्द्रियों और मन के माध्यम से कार्य करते रहेंगे तब तक इन परिमित और अवरोधक सीमाओं को पार नहीं कर पायेंगे।

उदाहरण के लिए, एक पुष्प के सौंदर्य को देखने के लिए यह आवश्यक है कि पुष्प आपकी खुली आँखों के सामने हो, चन्दन या चमेली की सुगंध लेने के लिए यह आवश्यक है कि वे नाक के आस-पास हों, चॉकलेट की मिठास या मिर्च की तिक्तता का स्वाद पाने के लिए उन्हें खाना पड़ेगा। इस प्रकार के अनुभव को वस्तुपरक कहते हैं, क्योंकि ये वस्तु की उपस्थिति, इन्द्रियों और इन दोनों के परिप्रेक्ष्य में मन पर निर्भर रहते हैं। लेकिन अनुभूतियों की अनेक श्रेणियाँ ऐसी भी हैं जिनमें आप बन्द आँखों से देख सकते हैं, भोजन के न होने पर भी उसका स्वाद पा सकते हैं, बिना किसी वाद्य यंत्र के संगीत को सुन सकते हैं। यह पूर्णत: व्यक्तिपरक अनुभूति है और मन के सीमित विचारों से पूरी तरह स्वतंत्र है। व्यक्तिपरक अनुभूति के द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान वस्तुपरक अनुभूति की अपेक्षा कहीं अधिक यथार्थ तथा सुस्पष्ट होता है, क्योंकि यह मन के विस्तार का परिणाम होता है।

मन का विस्तार वह घटना है जिसके फलस्वरूप मनुष्य इन्द्रियों, देश, काल और वस्तु के क्षेत्र के परे जाकर अनुभव प्राप्त कर सकता है। आप अतीत या भविष्य

में जा सकते हैं और उन स्थानों पर हो रही घटनाओं के विषय में जान सकते हैं जहाँ आप सशरीर उपस्थित नहीं हैं। इसे मन का विस्तार कहा जाता है, लेकिन यह तब तक सम्भव नहीं होता जब तक आप इन्द्रियगत अनुभवों से बँधे हुए हैं। इन्द्रियों तथा अहंकार से संचालित होने वाला मन सभी अनुभवों को राग एवं द्वेष के आधार पर श्रेणीबद्ध कर देता है। मन के द्वारा किया जाने वाला यह आरोपण किसी भी अनुभव से प्राप्त हुए ज्ञान को विकृत कर देता है और शुद्ध, परिष्कृत ज्ञान को विकसित होने का अवसर नहीं देता।

विस्तृत मन के द्वारा प्राप्त ज्ञान धीरे-धीरे विकसित होता है और अन्ततः अन्तर्ज्ञात ज्ञान के रूप में चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है जिसे शाश्वत, पूर्ण तथा यथार्थ ज्ञान कहा गया है। लेकिन मन का विस्तार एक रात में नहीं हो जाता है। साधक अनेक प्रकार के अनुभवों से होता हुआ आगे बढ़ता है। उनमें कुछ अनुभव मध्यम, कुछ तीव्र, कुछ प्रिय और कुछ अप्रिय भी होते हैं। यह एक क्रमिक विकास की प्रक्रिया है जिसकी परिणति ब्रह्म ज्ञान में होती है।

बच्चा एक रात में वयस्क नहीं बन जाता है। रूपान्तरण क्रमशः होता है। बचपन और वयस्कता के बीच की सीमा रेखा इतनी सूक्ष्म है कि यह नहीं बताया जा सकता है कि एक चरण कहाँ समाप्त हुआ और दूसरा कहाँ आरम्भ हुआ। इसी प्रकार मानव चेतना निरन्तर विकसित होती रहती है। मन अपना विस्तार करता हुआ नयी सीमाओं को लाँघता जाता है। रूपान्तरण हो रहा है, किन्तु उसकी गति क्रमिक है और परिवर्तन सूक्ष्म।

मन के विकास को गति प्रदान करने और अपने रूपान्तरण को निदेशित करने के लिए आपको तंत्र एवं योग के अभ्यास को अपनाना होगा। इन अभ्यासों की रचना ऊर्जा को पदार्थ से मुक्त करने की क्रिया को तीव्र बनाने और विशुद्ध सहज चेतना को, जो सभी प्रकार के ज्ञान की स्रोत है, प्रकट करने के लिए की गयी है।

तंत्र का उद्देश्य

दैनिक जीवन में हम ज्ञान के लिए जिस मन का उपयोग करते हैं वह इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करता है। किन्तु यदि हम अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुख कर दें और मन को अन्दर की ओर मोड़ दें तो यह स्वयं को आन्तरिक अनुभव तथा विस्तृत मन के द्वारा प्रकट करता है। इस प्रकार पदार्थ ऊर्जा से अलग हो जाता है, जिसके फलस्वरूप शक्ति स्वतन्त्र हो जाती है और उसके बाद शिव अर्थात् चेतना के साथ संयुक्त होकर समरूप सजगता उत्पन्न करती है।

जिस प्रकार सागर की ओर नदी का प्रसार उसकी सीमाओं और बाधाओं को समाप्त कर देता है, उसी प्रकार सीमित मन विस्तीर्ण होकर ब्रह्माण्डीय या अनन्त मन में समा जाता है और इस प्रकार सत्य को ग्रहण करने तथा उसे संप्रेषित करने वाला बन जाता है। परिणामस्वरूप ऊर्जा का विस्फोट होता है और अन्तर्निष्ठ चेतना पदार्थ से विमुक्त हो जाती है। इसे कुण्डलिनी की जागृति भी कहते हैं और सदा से तंत्र का यही उद्देश्य रहा है।

अन्य दर्शनों का भी यही लक्ष्य था, हालाँकि उनके मार्ग भिन्न थे। वेदान्त दर्शन में ब्रह्म या अविभाज्य, एकरूप, सर्वव्यापी चेतना की अवधारणा है। ब्रह्म शब्द की उत्पत्ति बृंह् धातु से हुई है जिसका अर्थ है विस्तार होना, इसलिए इसे विस्तरणशील चेतना के रूप में समझा जा सकता है। यह अद्वैत के रूप में स्थित है जिसमें विलीन होने के लिए हम निरन्तर प्रयासरत हैं।

तंत्र में इस अवधारणा को शिव या परम चेतना के रूप में प्रतिपादित किया गया है जो हम सभी के भीतर मूक साक्षी के रूप में स्थित हैं। वेदान्त के ब्रह्म हों या सांख्य दर्शन के पुरुष या तंत्र के शिव, मूल रूप से यह है एक ही अवधारणा। हालाँकि तंत्र और अधिकतर अन्य दर्शनों में यह अंतर है कि वे साधक के जीवन पर अनेक प्रकार के निषेध लगा देते हैं और नियमों के कठोरतापूर्वक पालन की अपेक्षा करते हैं, जबकि तंत्र प्रत्येक व्यक्ति को विकास की छूट देता है, भले ही वह विकास के किसी भी चरण में हो। तंत्र का कहना है कि आप भोगवादी हों या अध्यात्मवादी, आस्तिक हों या नास्तिक, बलशाली हों या दुर्बल, धनवान हों या दरिद्र – आपके लिए एक मार्ग है जिसे आपको ढूँढना है।

यही तंत्र का उद्देश्य है, गुह्य वासना या काला जादू या सिद्धियों की प्राप्ति या स्वेच्छाचारी जीवन नहीं। ये कभी तंत्र के उद्देश्य नहीं रहे हैं। तंत्र की इस ढंग से

विकृत व्याख्या की गयी होगी, लेकिन वह विवेचना का बिल्कुल भिन्न विषय है। इसके अतिरिक्त, हम तंत्र के यथार्थ विश्लेषण के लिए उन पर विश्वास नहीं कर सकते जो समरूप सजगता प्राप्त करने में विफल हो चुके हैं।

तंत्र – मन को मुक्त करने का एक उदार मार्ग

समय-समय पर तांत्रिक इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न विधियों एवं मार्गों पर प्रयोग करते रहे हैं। उनका मानना था कि सभी व्यक्ति एक ही मार्ग पर नहीं चल सकते, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति क्रमिक विकास के भिन्न स्तर पर है। प्राय: ऐसा कहा जाता है, 'एक व्यक्ति का भोजन दूसरे व्यक्ति के लिए विष हो सकता है।' तांत्रिकों ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक मार्ग को सम्मिलित करने की आवश्यकता को समझा था, चाहे व्यक्ति घोर विषयासक्त हो, गम्भीर दार्शनिक हो या साधनारत योगी।

वे प्राय: ऐसी विधियों के साथ प्रयोग करते थे जो सामान्य दृष्टि से अत्यन्त अश्लील और कामुक प्रतीत होती थीं। इन अभ्यासों को वीभत्स माना जाता था, क्योंकि इनमें एक नग्न स्त्री या एक शव के निकट बैठकर ध्यान करना और इसी प्रकार के अन्य उत्तेजित करने वाले अभ्यास सम्मिलित होते थे। इन्हीं कारणों से अनेक लोगों ने तंत्र का विरोध किया, इसकी आलोचना की और कहा कि यह भोग-वासना का एक बहाना है तथा इसमें किसी प्रकार का आध्यात्मिक अनुभव नहीं होता है। किन्तु तांत्रिकों की लगनशीलता और दृढ़ता ने कुछ और ही प्रमाणित किया। यदि वह वासना, मदिरा और मादक पदार्थों के साथ प्रयोग करता है तो उसकी परख इन क्रियाओं के आधार पर नहीं, बल्कि उसकी मानसिक सजगता, दृष्टिकोण और उसके उद्देश्य के आधार पर की जानी चाहिए। यदि वह प्रेतात्माओं का आवाहन करता है और ऐसे अनुष्ठान करता है जिसे सामान्य रूप से 'काला जादू' कहा जाता है, तो भी ऐसे कृत्यों के आधार पर उसकी आलोचना न करते हुए, उसके इन कृत्यों के उद्देश्य के आधार पर उसे परखना चाहिए।

एक तांत्रिक और साधारण कामुक व्यक्ति के अभ्यास में यही महत्त्वपूर्ण अन्तर है। कामुक व्यक्ति केवल कामेच्छाओं की पूर्ति और भौतिक उपलब्धि के लिए इन अभ्यासों को करता है। तांत्रिक इन अभ्यासों द्वारा क्रमिक ढंग से अपने अन्दर प्रसुप्त शक्तियों का विस्फोट करता है। वासना, भय, घृणा, प्रेम, क्रोध इत्यादि वे शक्तियाँ हैं जिनका वह सामना करता है। यदि इन शक्तियों को समुचित ढंग से नियन्त्रित कर लिया जाए तो अनेक प्रकार की उच्च अनुभूतियाँ प्राप्त हो सकती हैं। ध्यान के दौरान यदि एकाग्रता कायम रखना सम्भव हो तो ये शक्तियाँ दृश्यों, स्वप्नों, विभिन्न प्रकार की ध्वनियों और संगीत, और यहाँ तक कि वस्तुओं, पशुओं और मनुष्यों के रूप में भी मूर्त हो उठती हैं।

तांत्रिक का कौशल इसमें है कि वह निर्भीक और दृढ़ बना रहे। वह अनुभवों से अभिभूत नहीं हो, न ही भय के वशीभूत हो। यदि दुर्बल मानसिकता, असन्तुलित भावनाओं और विचलित मन वाला व्यक्ति इस प्रकार के अभ्यास करता है तो उसके मन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है, वह घोर विषाद में डूब सकता है, यहाँ तक कि पागल भी हो सकता है।

भय और वासना क्या हैं? ये केवल ऊर्जा की शक्तियाँ हैं। दैनिक जीवन में होने वाले भावनात्मक अनुभव किसी व्यक्ति को पागल कर देने के लिए पर्याप्त हैं। यदि सन्तुलन कायम नहीं रखा जा सका तो व्यक्ति हत्या, बलात्कार और अन्य पागलपन वाले कृत्य कर बैठता है। यदि आपके मन को आपके अन्दर छुपे गहरे भय और वासना के भयंकर आघात का सामना करना पड़े तो क्या होगा? क्या आप उसे सम्भाल पायेंगे? एक तांत्रिक अपने अचेतन से अनुभवों का विस्फोट करने में सक्षम होता है। वह इन आन्तरिक शक्तियों को नियंत्रित कर महत्तर एवं सूक्ष्म शक्तियों में रूपान्तरित करने में निपुण होता है जिन्हें वह अपनी इच्छा से निर्दिष्ट कर सकता है।

हालाँकि यह पाया गया कि इन अभ्यासों में से अनेक के परिणामस्वरूप मन के अज्ञात आयामों से अद्भुत अनुभव प्राप्त हुए, जिनका सामना करने में एक औसत व्यक्ति सक्षम नहीं था। इसलिए तांत्रिकों ने ऐसे अभ्यासों का विकास किया जिसके द्वारा साधक सहजतापूर्वक अपनी क्षमता के अनुसार धीरे-धीरे क्रमिक अनुभव प्राप्त कर सके। उग्र अभ्यासों को उनके लिए छोड़ दिया गया जो शक्तिशाली आन्तरिक अनुभवों का साहस और धैर्य के साथ सामना कर सकें। ऐसी सरल विधियाँ, जो उन्नत अभ्यासों के लिए आधार तैयार करती हैं, उनमें हठ योग, क्रिया योग और जप के अतिरिक्त तत्त्व शुद्धि सम्मिलित हैं।

तांत्रिक साहित्य

तांत्रिक साहित्य में इनकी तथा अन्य अभ्यासों की स्पष्ट रूप से व्याख्या की गयी है। तांत्रिक साहित्य अत्यन्त विषद और अधिकतर लोगों के लिए प्राय: अबोधगम्य है क्योंकि यह प्रतीकों, रूपकों, पौराणिक कथाओं तथा दृष्टान्तों के रूप में लिखित है। इसका विशेष कारण है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी सहज वृत्तियों पर विजय प्राप्त नहीं की है उसके हाथों में तंत्र उसी प्रकार है जैसे किसी बच्चे के हाथों में बारूद का गोला।

तांत्रिक साधना के परिणामस्वरूप कम समय में ही सिद्धि या आत्मिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। लेकिन चेतना के विकास में इन सिद्धियों का कम ही महत्त्व होता है। बल्कि प्राय: ये बाधा बन जाती हैं, क्योंकि अनेक साधक इनसे प्राप्त होने वाले लाभों में हमेशा के लिए उलझकर रह जाते हैं। इसलिए तंत्र में इस ज्ञान को

अत्यन्त चतुराई से इस प्रकार दुर्बोध बनाकर रखा गया है कि केवल सच्चा साधक ही इसके प्रतीकशास्त्र को समझ पाये।

कुल मिलाकर चौंसठ तंत्र हैं और वे सभी विज्ञान के विविध पक्षों से सम्बद्ध हैं, जैसे अपने और दूसरे व्यक्ति के मन को किस प्रकार नियन्त्रित किया जाये, अमरता किस प्रकार प्राप्त की जाये, इत्यादि। सुविख्यात भाष्यकार भास्कर राय ने आठ और शास्त्रों को इनमें सम्मिलित किया है जिससे तंत्रों की कुल संख्या बहत्तर हो गयी है। तंत्र विज्ञान में इतनी विविधता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने लिए एक मार्ग उपलब्ध हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति बिल्कुल भी आध्यात्मिक न हो, तो भी उसे अपनी चेतना का विस्तार करने के लिए एक मार्ग मिल जायेगा।

तंत्र शास्त्रों के अतिरिक्त पुराणों का भी सम्बन्ध तंत्र विज्ञान से है। पुराण अधिकतर दृष्टान्त रूप में हैं और अनेक तांत्रिक अभ्यासों को रूपक-कथाओं का छद्म रूप दे दिया गया है। वे देवों और राक्षसों की जीवनगाथा का वर्णन करती हैं और उन रंगबिरंगी कथाओं के माध्यम से हम तंत्र के मार्ग की ओर बढ़ जाते हैं। उदाहरण के तौर पर श्रीमत् देवी भागवतम् पुराण में तत्त्व शुद्धि के अभ्यासों का रहस्योद्घाटन किया गया है।

शक्ति की उपासना

तंत्र के साधकों को प्रारम्भ में ही एक बात समझ लेनी होगी। यद्यपि तंत्र विज्ञान एक सर्वव्यापी अद्वैत सत्ता को स्वीकार करता है, किन्तु यह शिव एवं शक्ति के द्वैतवाद के प्रति भी श्रद्धा और विश्वास व्यक्त करता है। शिव निष्क्रिय तत्त्व है जो निष्कलुष विशुद्ध चेतना के रूप में स्थित होता है, किन्तु शक्ति जो गतिमान तत्त्व है, उसकी प्रेरणा से निश्चल रहने वाला शिव तत्त्व क्रियाशील हो जाता है। शिव का ताण्डव नृत्य इसका प्रतीक है और इस नृत्य के कारण शिव को नटराज कहा जाता है। शिव के प्रत्येक पक्ष के अनुरूप शक्ति का एक पक्ष है। यदि शिव शम्भु हैं तो शक्ति शाम्भवी हैं; यदि शिव महेश्वर हैं तो शक्ति माहेश्वरी हैं; यदि शिव भैरव हैं तो शक्ति भैरवी हैं; यदि शिव रुद्र हैं तो शक्ति रौद्री हैं। शिव और शक्ति प्रत्येक स्तर पर एक-दूसरे के पूरक हैं।

इस अवधारणा से एक नये सम्प्रदाय का जन्म हुआ – शाक्त सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय का अनुसरण करने वाले शक्ति को ही सर्वव्यापी ईश्वर मानते हैं। वस्तुत: शाक्त पुराणों में यह प्रश्न उठा है कि ईश्वर स्त्री हैं या पुरुष। शाक्तों ने सर्वसम्मति से यह विश्वास व्यक्त किया है कि ब्रह्माण्ड की स्रष्टा एक स्त्री ही हो सकती है, क्योंकि सृजन करना स्त्री की ही प्रकृति है, पुरुष की नहीं। तंत्र के प्रभाव से ही शक्ति की उपासना अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची। वेद पर आधारित ब्रह्मविज्ञान पुरुष प्रधान है, उसमें देवियाँ या शक्तियाँ गौण भूमिका में हैं। तंत्र में ऐसा नहीं है।

सभी तांत्रिक अभ्यासों की रचना अन्तर्भूत शक्ति या ऊर्जा को, जो स्त्री या ऋणात्मक तत्त्व है, जाग्रत करने के लिए की गयी है। बिना इस ऊर्जा को जाग्रत किये चेतना कभी उद्घाटित नहीं हो सकती। तंत्र का यह दावा है और आज विज्ञान इस दावे की सत्यता को ढूँढने में लगा है। आधुनिक भौतिकशास्त्र के अनुसार पदार्थ और ऊर्जा अन्तर्परिवर्तनीय हैं। तंत्र एक कदम आगे बढ़कर कहता है कि पदार्थ, ऊर्जा और चेतना अन्तर्परिवर्तनीय हैं। लेकिन पदार्थ बिना ऊर्जा के माध्यम के विशुद्ध चेतना में परिवर्तित नहीं हो सकता है। इसलिए शक्ति शिव के समकक्ष हैं।

शरीर में शिव-शक्ति का प्रकटीकरण

तंत्र का मानना है कि ये शक्ति और शिव तत्त्व भाव या कल्पना मात्र नहीं हैं, बल्कि शरीर और मन के ढाँचे के अन्दर ठोस वास्तविकताएँ हैं। तंत्र में कहा गया है कि शक्ति, जो सूक्ष्मतम ऊर्जा का प्रकट रूप है, मेरुदण्ड के मूल में सर्प की कुण्डली के रूप में स्थित है और इसे कुण्डलिनी कहा जाता है, जबकि शिव या चेतना मनुष्य के उच्चतम विकासमूलक केन्द्र, सहस्रार में, अर्थात् सिर के शीर्ष पर स्थित है।

इन्द्रियानुभूतियों से संचालित होने वाले शरीर और मन की स्थूलता के कारण अधिकतर लोगों में ये दोनों शक्तियाँ प्रसुप्त रहती हैं। कुण्डलिनी की सुषुप्त शक्ति को जाग्रत करने के लिए उस क्षेत्र में प्राण की मात्रा और क्षमता में वृद्धि करना आवश्यक है।

एक बार जब कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है तब उसे शिव या चेतना से मिलने के लिए सहस्रार के क्षेत्र की ओर निर्दिष्ट किया जाता है। कुण्डलिनी शक्ति आरोहण के क्रम में छ: चक्रों से होती हुई जाती है। ये चक्र ऊर्जा के भण्डार होते हैं और कुण्डलिनी उन्हें आविष्ट करती जाती है। ये चक्र नाड़ियों के संयोजक स्थल होते हैं और ये स्थूल से सूक्ष्म के बीच विभिन्न आवृत्तियों पर स्पंदित होते रहते हैं। चक्रों के अन्दर सृजनात्मक शक्तियाँ सुप्त अवस्था में रहती हैं जो दैनिक जीवन में आंशिक रूप से प्रकट होती रहती हैं। उनकी पूर्ण क्षमता को तभी जाग्रत किया जा सकता है जब कुण्डलिनी शक्ति उनको बेधती हुई शिव से मिलने के लिए आगे बढ़ती जाये।

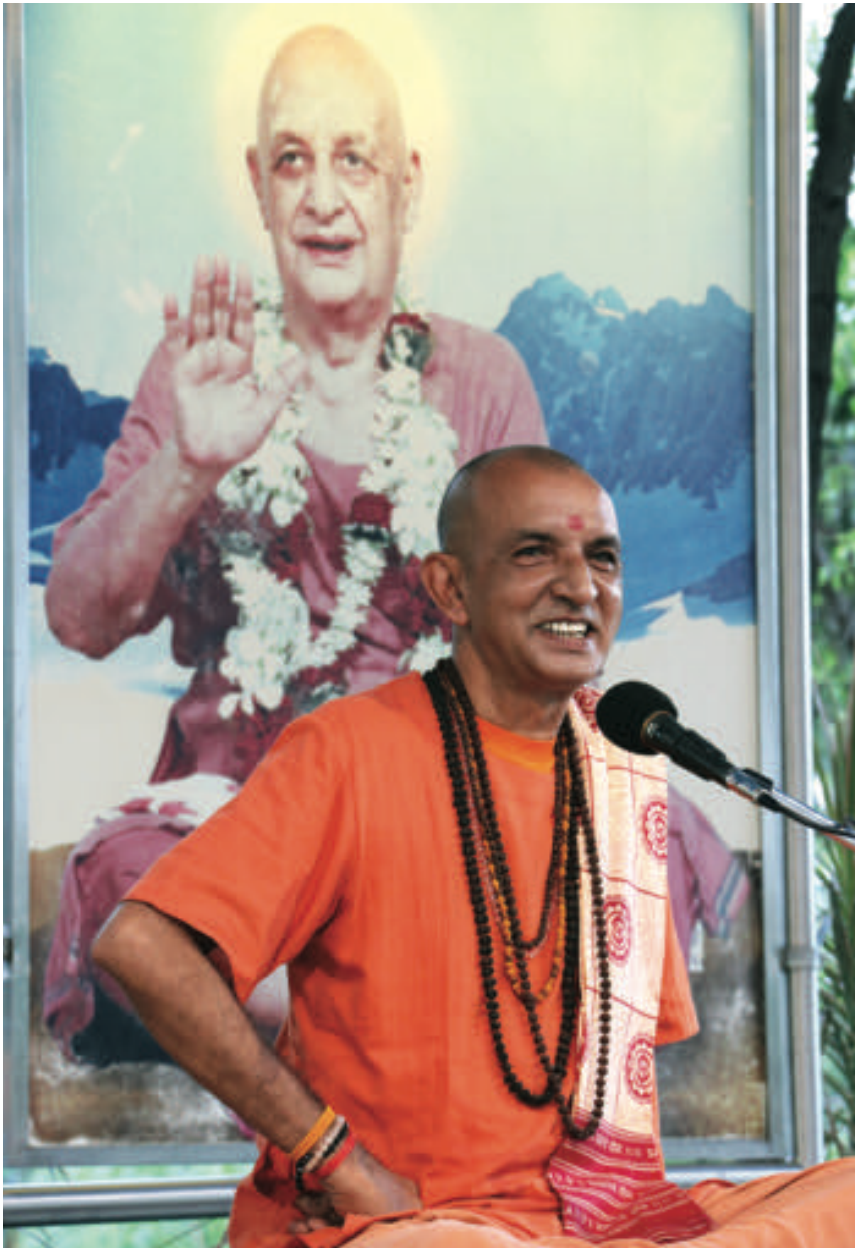

तांत्रिक साधना का आधार

तांत्रिक साधना के सार को उपासना की तीन अवस्थाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है। तांत्रिकों का मानना है कि प्रत्येक क्रिया को, भले ही वह कितनी ही सांसारिक क्यों न हो, यदि अपने अन्त:करण में स्थित या ब्रह्माण्ड में व्याप्त ईश्वर को अर्पित किया जाए तो वह सार्थक हो जाती है और अपनी चेतना को रूपान्तरित करने का एक माध्यम बन जाती है। उपासना की तीन अवस्थाएँ इस प्रकार हैं –

- शुद्धि – स्थूल, सूक्ष्म एवं आत्मिक तत्त्वों का शुद्धिकरण।
- स्थिति – एकाग्रता के फलस्वरूप ज्ञान, जो तत्त्वों के परिष्करण या शुद्धिकरण से प्राप्त होता है।
- अर्पण – अपने अन्दर उच्चतर शक्तियों के साथ एकीकरण या ब्रह्माण्डीय चेतना की प्राप्ति।

इस प्रकार शुद्धि सभी तांत्रिक साधनाओं का आधार है, भले ही वह वामाचार, कौलाचार या वेदाचार के अभ्यासों पर आधारित हो। ये तांत्रिक साधना की तीन प्रमुख श्रेणियाँ हैं और इन सब ने आध्यात्मिक साधना और विकास के एक अभिन्न अंग के रूप में शुद्धि की आवश्यकता पर बल दिया है।

योग-मार्ग के सोपान

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

आधुनिक युग मशीन का युग है, अत: यह भौतिक शक्ति-प्रधान है। मनुष्य शक्ति-उत्पादन के लिए नये-नये यन्त्रों का निर्माण कर रहा है, परन्तु वह स्वयं अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकता। यही कारण है कि विज्ञान के अनुसन्धानों का दुरुपयोग होने लगा है। योग-मार्ग ही इस संकटापन्न स्थिति के लिए एकमेव औषधि है। योगाभ्यास के द्वारा मनुष्य उन असाधारण शक्तियों को प्राप्त कर लेता है जिन्हें कोई भी यन्त्र पैदा नहीं कर सकता।

मन, इन्द्रिय तथा भौतिक शरीर का अनुशासन ही योग है। योग भीतर की सूक्ष्म शक्तियों के संघटन एवं नियन्त्रण में सहायता प्रदान करता है। योग पूर्णता, शान्ति तथा अमर सुख प्रदान करता है। योग आपके व्यापार तथा दैनिक जीवन में सहायता दे सकता है। योगाभ्यास से आपके मन में सदा शान्ति रहेगी। आपका स्वास्थ्य सुन्दर रहेगा। आपकी शक्ति बढ़ेगी। अल्पकाल में ही आप बहुत अधिक कार्य कर सकेंगे। आपको जीवन के हर क्षेत्र में सफलता मिलेगी। योग आपमें नव-शक्ति, नव-उत्साह, विश्वास एवं आत्मबल भरेगा। योग के द्वारा आप मन, वासना, भावना, जिह्वा इत्यादि इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त कर सकते हैं। मन तथा शरीर आपके अधीन रहेंगे।

अपना सुधार कीजिए। अपने चरित्र का निर्माण कीजिए। अपने हृदय को शुद्ध बनाइए। दिव्य सद्गुणों का विकास कीजिए। दुर्गुणों का दमन कीजिए। आपके अन्दर जितनी निम्न चीजें हैं, उन पर विजय प्राप्त कीजिए। उन सभी गुणों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बनिए जो उदात्त तथा दिव्य हैं। अपने भीतर सद्गुणों के शीघ्र विकास के लिए इन बारह सद्गुणों पर दस-दस मिनट तक ध्यान कीजिए –

जनवरी में	*नम्रता*	जुलाई में	*सच्चाई*
फरवरी में	*आर्जव*	अगस्त में	*शुद्धप्रेम*
मार्च में	*साहस*	सितम्बर में	*दानशीलता*
अप्रैल में	*धैर्य*	अक्टूबर में	*क्षमा*
मई में	*करुणा*	नवम्बर में	*समता*
जून में	*उदारता*	दिसम्बर में	*सन्तोष*

शुद्धता, उत्साह, संलग्नता तथा प्रसन्नता का भी विकास कीजिए। कल्पना कीजिए कि आपमें वास्तव में ये गुण हैं। स्वयं से कहिए, 'मैं धैर्यवान् हूँ। आज से मैं चिड़चिड़ा न बनूँगा। मैं अपने दैनिक जीवन में इस सद्गुण को व्यक्त करूँगा। मैं उन्नति कर रहा हूँ।' धैर्य के इस सद्गुण के लाभों पर विचार कीजिए। अधैर्य से होने

वाली हानियों का भी चिन्तन कीजिए। इसी प्रकार आप सभी सद्गुणों का विकास कर सकते हैं। जो व्यक्ति अपने दोषों को उसी प्रकार देख सकता है जिस प्रकार दूसरों के दोषों को देखता है, वह शीघ्र ही महात्मा हो जायेगा। सत्य के साथ सतत् अनुराग रखिए। सत्य के लिए सर्वस्व भी न्योछावर करने के लिए तैयार रहिए।

भूत की विफलताओं तथा गलतियों की चिन्ता न करते रहिए क्योंकि इससे आपका मन शोक, पश्चात्ताप तथा अवसाद से भर जायेगा। भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति न कीजिए। सावधान रहिए। अपनी विफलताओं के कारण पर विचार कीजिए और उसे दूर करने के लिए यत्नशील रहिए। सतर्क तथा सावधान रहिए। नयी शक्ति तथा सद्गुणों से सबल बनिए। धीरे-धीरे संकल्प-शक्ति का विकास कीजिए।

मानव-जन्म बहुमूल्य है। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए इस जन्म का सदुपयोग करें। जीवन क्षणभंगुर है। समय को व्यर्थ न गँवायें। सत्कार्यों में रत हो जायें। दिव्य जीवन के पथ में संलग्न हो जायें। अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बनायें, परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करें, दूसरों से मेल-मिलाप रखें। अपमान तथा क्षति को सहन करें। सबकी सेवा करें। सबसे प्रेम करें।

सेवा करो

अध्यात्म के मार्ग में पहला चरण है मानवता की निष्काम सेवा। मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान के लिए भगवान ने कर्म की योजना बनायी है। वास्तविक जीवन का रहस्य प्रभु-प्रेम तथा मानव-सेवा में निहित है। सच्चे जीवन का अर्थ सेवा तथा बलिदान है। मानव जीवन है ही सेवा के लिए। जनसेवा में जीवन समर्पित कर

दें। जितनी शक्ति आप दूसरों के उत्थान तथा सेवा में लगायेंगे, उतनी दिव्य शक्ति आप पर बरसेगी। सेवा द्वारा ही आप दूसरों के मन पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। मानवता की सेवा दिव्य भाव से करें। तब अहंमन्यता सर्वथा मिट जायेगी।

निष्काम सेवा पवित्र करती है – सेवा से अपने मन की शुद्धि तो होती ही है, इसके साथ ही अहंकार, घृणा, ईर्ष्या तथा अभिमान की भावनाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। इससे नम्रता, शुद्धप्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता तथा दया के गुण भी पनपते हैं, पृथकता की दुर्भावना मिटती है, स्वार्थ की भावना नष्ट होती है और अन्त में आपको आत्मदर्शन हो जाता है। आप एक ही में सबके तथा सबमें एक के ही दर्शन करने लगते हैं। आपको असीम प्रसन्नता प्राप्त होती है। निष्काम सेवा आध्यात्मिक पथ का प्रथम सोपान है। मुक्ति के मार्ग का रहस्य निष्काम सेवा में ही छिपा है। सार्वभौमिक चेतना की प्राप्ति में एक जिज्ञासु को निष्काम सेवा ही सहायता देती है और ईश्वर में तन्मय कराती है। आरम्भ में निरन्तर निष्काम सेवा द्वारा ही साधकों को अपनी स्वार्थ भावना को मिटाने का पूर्णतया प्रयास करना चाहिए।

उदारता तथा निष्काम सेवा हृदय को विकसित करती है और निम्न स्तर के मन को शुद्ध करती है। निर्धनों तथा दु:खी लोगों की निष्काम सेवा कर अपना हृदय शुद्ध करें। केवल तभी आपका मन प्रभु के निवास-योग्य बन पायेगा। केवल निष्काम सेवा ही आपके मन को शुद्ध करके उसमें दिव्य गुण भर सकती है। शुद्ध हृदय वाले ही प्रभु का दर्शन करने में सफल होते हैं।

निष्काम सेवा के अवसर – यह जगत् आपका ही रूप है, अत: सबकी सेवा करें। सबसे प्रेम करें। निर्धनों, दलितों, दीनों तथा पीड़ितों में भगवान के ही दर्शन करें। मानव मात्र के सेवक बनें। भगवत्साक्षात्कार का यही रहस्य है। दलितों और दु:खियों की ढूँढ-ढूँढ कर सेवा करें।

दिव्य भाव से अपने माता-पिता, बड़े-बूढ़ों, गुरुजनों, अतिथियों, रोगियों तथा महात्माओं की सेवा करें। क्षुधापीड़ितों को भोजन दें। पीड़ितों को सान्त्वना दें। शोकग्रस्तों तथा सन्तप्तों का शोक निवारण करें। नग्नों को वस्त्र-दान दें। अनपढ़-अशिक्षितों को विद्या-दान दें। दलितों को ऊपर उठायें। आपको भगवान का आशीर्वाद प्राप्त होगा।

निराश्रितों को औषधालय से औषधियाँ ला कर दें। कुछ पुराने कपड़े एकत्र कर दरिद्रजनों के मध्य जाकर बाँटें। सड़क पर घूमते अन्धे, लूले, लँगड़े तथा भूखे व्यक्तियों को जाकर कुछ पैसे भी दान दें। किसी सामाजिक संस्था में प्रतिदिन एक घण्टे के लिए निष्काम भाव से सेवा किया करें।

अन्ततोगत्वा अपने लिए स्वयं विचार करें कि आप अपनी शक्ति, बुद्धि, शिक्षा, धन-सम्पत्ति, बल तथा जो कुछ भी आपके पास है – इन सबका दीनों तथा जन-साधारण के लिए यथासम्भव किस प्रकार सदुपयोग कर सकते हैं।

कोई भी सेवा तुच्छ नहीं – सेवा का एक भी अवसर हाथ से जाने न दें। आप प्रसन्नचित्त हो पूरे मन से सेवा-कार्य करें। मुख पर कभी त्यौरी न चढ़ायें। प्रत्येक क्षण का सेवा में पूर्णतया सदुपयोग करें। सेवा या दान के बदले में कुछ भी न चाहें, बल्कि सेवा का सुअवसर देने वाले को धन्यवाद दें, क्योंकि उसने आपकी सेवा स्वीकार की।

मानव की सेवा माधव की सेवा है। मानवता की सेवा यन्त्रवत् नहीं करें। सेवा आत्मभाव से करें। प्रभु सबमें निवास करते हैं। वे ही आपकी सेवा को पूजा के रूप में ग्रहण कर रहे हैं – इस भाव से सबकी सेवा करें। यह जगत् भगवान का ही तो रूप है। प्राणधारी जीवों की सेवा द्वारा ही भगवान की श्रेष्ठतम पूजा सम्भव है। स्मरण रहे कि ईश्वर ही आपसे कार्य करवाते हैं। आप तो उनके हाथ की कठपुतली हैं। अहंकारवश आप समझ बैठते हैं कि आप कार्य कर रहे हैं। तभी आप बन्धन में पड़ जाते हैं। आप यह मानें कि प्रभु-प्रेरणा से ही आप कार्य कर रहे हैं। तब आपकी शक्ति बढ़ेगी और अहंकार घटेगा। कर्म-बन्धन नहीं रहेगा।

आप संरक्षक बन कर कार्य करें, न कि स्वामी या अधिकारी बन कर। तब न आपमें ममत्व रहेगा और न ही आप बन्धन में पड़ेंगे। सभी कार्यों को एकाग्रता एवं भक्तिपूर्वक पूर्णतया करें। कार्य में ही लीन रहें। दत्तचित हो कर कर्म करें। परिणाम की चिन्ता छोड़ें। सफलता तथा असफलता का विचार न करें, न ही भूतकाल की चिन्ता करें। दृढ़ आत्मविश्वास रखें।

अनासक्त होकर काम करें – निष्काम सेवा अति-कठिन है। अधिकतर लोग जन-मंच पर निष्काम सेवक के छद्म वेश में चढ़ जाते हैं, किन्तु वस्तुत: वे अपने स्वार्थ में ही रत रहते हैं। कई संन्यासी भी ऐसा ही करते हैं जो एक बुरी बात है। कर्म अनासक्ति से ही करने चाहिए। कितना ही आकर्षक और प्रिय क्यों न हो, उस कार्य को त्यागने के लिए सर्वदा तैयार रहें। ज्यों-ही उस कार्य को छोड़ने के लिए अन्तर्प्रेरणा मिले, आप उसे तुरन्त छोड़ दें। आसक्ति ही आपको बन्धन में डालती है।

प्रेम करो

प्रेम सत्य है, प्रेम ईश्वर है। यह आत्मशक्ति की उच्चतम अभिव्यक्ति है। जहाँ प्रेम है वहाँ शान्ति है और जहाँ शान्ति है वहाँ आनन्द है। इसलिए सबसे प्रेम करो। पूरे विश्व में इस ईश्वरीय प्रेम का संचार करो। प्रेम और भाईचारे का संदेश जन-जन तक पहुँचाओ।

दान दो

गरीबों, बीमारों और निराश्रितों को दो। अनाथों, अंधों, बूढ़ों तथा विधवाओं को दो। आप दान देंगे तो सारे विश्व की सम्पत्ति आपकी होगी। यही प्रचुरता और दिव्य

जीवन का रहस्य है। इसलिए दो, दो, दो। जो आपको प्राप्त होता है उससे आप अपना जीवन चलाते हैं, किन्तु जो आप देते हैं उससे आपका जीवन बनता है। प्रचुर दान दें, आपको सुख, शान्ति और सफलता प्राप्त होगी। आपका हृदय शुद्ध और पवित्र बनेगा। आपको अवर्णनीय आध्यात्मिक आनन्द का अनुभव होगा, आन्तरिक शक्ति का विकास होगा। सद्भावनापूर्ण विचार प्रेषित करो, और जो कुछ आपके पास है, उसे दूसरों के साथ बाँटो। प्रार्थना आपको आधे रास्ते तक ले जाती है, उपवास आपको भगवान के द्वार तक पहुँचाता है और दान आपका प्रवेश सुनिश्चित करता है।

शुद्ध बनो

मन की पवित्रता से शान्ति, प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियजय और ईश्वर-साक्षात्कार की योग्यता प्राप्त होती है। सद्गुणों के विकास, आत्म-नियंत्रण और भक्ति के द्वारा मन को शुद्ध किया जाना चाहिए। जब मन पवित्र हो जाता है, तब यह आपका मित्र बन जाता है, क्योंकि यह सत्य पर पड़े आवरण को हटाता और आपको उसका अनुभव करने में सक्षम बनाता है। अपने जीवन से द्वेष, अशुद्धियों, घृणा, वासना को हटाने और उसमें प्रेम, अच्छाई, शान्ति और शुद्धता का संचार करने से बढ़कर आपके लिए कौन-सा कार्य हो सकता है?

ध्यान करो

अमरता और परमानन्द की प्राप्ति केवल ध्यान से हो सकती है। ध्यान दु:ख और कष्ट के सभी कारणों का निवारण कर देता है। नियमित ध्यान मन को शान्त और

स्थिर बनाता है तथा अन्त:प्रज्ञा का मार्ग प्रशस्त करता है। जब आप गहरे ध्यान में नीरवता के द्वार पर पहुँचते हैं, तब बाह्य जगत् तथा आपकी सभी समस्याओं का विलोप हो जाता है। आपको परम शान्ति प्राप्त होगी। इस शान्ति में ही प्रकाश है। इस शान्ति में ही वास्तविक शक्ति और आनन्द है। इन्द्रियों के द्वारों को बन्द कर दो। विचारों और भावनाओं को शान्त करो। प्रात:काल बिना हिले-डुले शान्त होकर बैठ जाओ। ग्रहणशीलता का भाव रखो। भगवान के साथ अकेले रहो, उनसे बातचीत करो। नियमित ध्यान करो और आत्म-साक्षात्कार करो।

अच्छे बनो, अच्छा करो

अच्छाई सबसे बड़ा गुण है। सद्गुणों का विकास करो। अच्छे, दिव्य विचारों को प्रश्रय दो। सारी नैतिकता और विहित आचरण इसमें निहित हैं। यदि आप अच्छे बनना चाहते हैं तो अच्छा देखिये, अच्छा सुनिये, अच्छा सोचिये, अच्छा कीजिए, अच्छा बोलिए, अच्छा पढ़िए, अच्छा लिखिये, अच्छा खाइये, अच्छा पीजिए, अच्छे बनिये।

अच्छा कर्म कभी व्यर्थ नहीं जाता। यह हृदय को शुद्ध बनाता है और ईश्वर के अनुग्रह का मार्ग प्रशस्त करता है। प्रत्येक शुभ कर्म अमरत्व या सनातन जीवन के लिए एक बीज बन जाता है। जितने अच्छे कर्म कर सकते हो, जितने प्रकार से कर सकते हो, जितने लोगों के लिए कर सकते हो, जिस स्थान में, जिस समय भी कर सकते हो, पूरे उत्साह, शक्ति, प्रेम और रुचिपूर्वक जब तक कर सकते हो, करो। यह आपका स्वभाव बन जाए। दूसरों के लिए अच्छे कर्म करने और उनके जीवन में प्रसन्नता लाने से आपका जीवन अच्छाई और प्रसन्नता से भरपूर हो जाता है।

दया और करुणा

अपने भीतर दया का भाव विकसित करो। यह भाव पीड़ा में मरहम का काम करता है। दयापूर्ण शब्द बोलने या कार्य करने में कोई मोल नहीं लगता, किन्तु यह दूसरों के हृदय में प्रसन्नता का संचार करता है, जिसे धन से नहीं खरीदा जा सकता। दयालुता की भाषा एक बहरा भी सुन सकता है और मूर्ख भी समझ सकता है। दयालुता परमानन्द के राज्य का सीधा पार-पत्र है।

अपने हृदय में करुणा उपजाओ। दूसरों के कष्टों को समझो और हमेशा उनकी सहायता के लिए तत्पर रहो। पूरा विश्व एक परिवार है। तुम्हारे पास जो कुछ है उसका उपयोग दूसरों के साथ मिल-बाँट कर करो।

आध्यात्मिकता का अर्थ ही होता है दिव्य आदर्शों को अपने जीवन में उतारना, मानव स्वभाव को दिव्य स्वभाव में रूपान्तरित करना। जब अपने भीतर यह रूपान्तरण लाते हो तभी पूर्णता की प्राप्ति संभव होती है। शुद्धिकरण और हृदय

के रूपान्तरण से ही धारणा और ध्यान के अभ्यास सधते हैं। सत्त्व के विकास के लिए आपको अपने भीतर से आसुरी वृत्तियों को पूर्णतया नष्ट करना होगा। जब तक अपने भीतर से नकारात्मक वृत्तियों को हटाने के लिए तीव्र और कठिन परिश्रम नहीं होता तथा आप शुद्ध, सात्त्विक स्वभाव में स्थिर नहीं हो जाते, तब तक क्षणांश के लिए भी यह कल्पना मत कीजिए कि आप लक्ष्य के समीप पहुँच गये हैं।

इस बात को स्पष्ट रूप से याद रखिये। इस पर सतत् चिन्तन कीजिए। जान लीजिए कि यही वास्तविक आध्यात्मिकता है। नैतिक परिवर्तन के महत्त्व को पूरी तरह से समझिये। आत्म-प्रवंचना के खतरों से सावधानीपूर्वक बचिये। नियमित साधना कीजिए और दिव्य अनुग्रह के लिए प्रार्थना कीजिए। साधना में नैरन्तर्य का बहुत महत्त्व है। यह कल्पना मत कीजिए कि आप आध्यात्मिकता के शिखर पर पहुँच रहे हैं। धैर्यपूर्वक परिणामों का इंतजार कीजिए। जब आपके स्वभाव में परिवर्तन हो जाएगा, आप शुद्ध और तैयार होंगे, तब भगवद् कृपा का प्रवाह अपने आप होने लगेगा, आत्मा के प्रकाश से माया का आवरण अपने आप हट जायेगा। जब आप कठोरता, अहंकार, अभिमान और वासना से रिक्त हो जायेंगे, तब आपके भीतर स्वत: आनन्द का संचार होगा। जहाँ दया, विनम्रता और पवित्रता होती है, वहाँ आध्यात्मिकता उपजती है, साधुता उभरती है, दिव्यता अवतरित होती है।

योग और अध्यात्म की नदी में स्नान करो, इसमें डुबकी लगाओ, इस पर तैरो, आनन्दमग्न होओ!

आदमी की कीमत

तैमूर लंग के अनुयायी एक बार तुर्किस्तान के प्रसिद्ध कवि, अहमदी को पकड़ लाए। उस समय तैमूर अपने कुछ गुलामों को मौत की सजा सुना रहा था। अहमदी को देख तैमूर बोला, 'सुना है कवि बहुत पारखी होते हैं। तुम बता सकते हो कि इन गुलामों का मूल्य क्या होगा?' अहमदी ने निर्भय होकर जवाब दिया, 'इनमें हर गुलाम की कीमत चार सौ अशर्फ़ियों से कम नहीं।' यह जवाब सुनकर तैमूर ने फिर पूछा, 'अगर इनका मूल्य चार सौ अशर्फ़ियाँ हैं, तो मेरा मूल्य क्या होगा?'

'आपकी कीमत चालीस अशर्फ़ियों से ज्यादा नहीं,' अहमदी उसी निर्भीक अंदाज में बोला। उसका जवाब सुनकर तैमूर तिलमिला उठा। वह खीझकर बोला, 'इतने मूल्य की तो मेरी पोशाक ही है।'

'हाँ, हजूर, मैं आपकी पोशाक की ही कीमत बता रहा हूँ, क्योंकि जिस आदमी में दया, करुणा, मानवता, प्रेम और न्याय की भावना नहीं, उसके जीवन का कोई क्या मोल देगा?' अहमदी ने जवाब दिया। एक कवि की ऐसी निर्भीकता के समक्ष तैमूर स्तब्ध रह गया।

आश्रम जीवन में कर्मयोग का स्थान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

एक बार आपने कर्मयोग का महत्त्व समझ लिया तो आपके कार्यों की गुणवत्ता सुधर जाती है और कोई भी काम कर्मयोग बन जाता है। साधक का उदात्तभाव ही साधारण कर्म को कर्मयोग में बदल देता है। आप कर्मयोग शरीर, मन, वाणी या इन्द्रियों से करें, उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए। आप जो भी करें, तटस्थ भाव से करें और आत्मशुद्धि के प्रयोजन से करें।

प्रत्येक व्यक्ति का कर्म और उसे करने की प्रक्रिया के प्रति एक विशेष भाव होता है। भाव दो प्रकार के होते हैं – एक आसक्ति पर निर्भर करता है, दूसरा अनासक्ति पर। क्या आप इन दोनों के अन्तर को समझते हैं? मान लो मेरी एक आया है जो प्रतिदिन मेरे घर मेरे बच्चे की देखभाल के लिए आती है। एक दिन मेरा बच्चा बीमार हो जाता है, मैं उसे अधिक पैसे देता हूँ कि वह साथ रहे, समय पर दवा देती रहे। वह रातभर जागती है, मैं भी रात में नहीं सोता हूँ क्योंकि मैं अपने बच्चे के विषय में चिन्तित हूँ। दोनों में से कोई भी सो नहीं पाता, पर क्या आप इस अन्तर को समझ सकते हैं? वह नहीं सोती है क्योंकि यह उसका उत्तरदायित्व है, और मैं नहीं सोता हूँ क्योंकि मैं आसक्त हूँ।

एक दिन आया मेरे पास आती है और कहती है, 'मालिक, मेरा घर जाना जरूरी है, मेरा बच्चा बड़ा बीमार है।' मैं उससे रुकने के लिए कहता हूँ, पर उसे समझा नहीं पाता और वह अगली ट्रेन से निकल जाती है। रातभर वह ट्रेन में सफर करती है, पर बिल्कुल सो नहीं पाती है। क्यों? इसलिए कि उसके अपने बच्चे का मामला है। इस तरह यह स्पष्ट है कि कर्म के प्रति भाव प्रयोजन पर निर्भर करता है।

भगवद्गीता की मुख्य शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण श्लोक से सम्बन्धित है – *कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन* – आपको कर्म करने का ही अधिकार है, उसके फल पर नहीं। फिर भी हम पाते हैं कि व्यक्ति जो भी कार्य करता है, उसे उसके फल की अपेक्षा रहती है।

अनेक आश्रमों, मठों और संस्थाओं में मैंने देखा है कि अन्तेवासियों ने कर्मयोग का सही ढंग से मूल्यांकन नहीं किया है। वे सोचते हैं कि संस्था को चलाते रहने के लिए काम करना है। यह कर्मयोग का सही चित्रण नहीं है। संस्था को लाभ हो सकता है, पर निश्चित रूप से यह उद्देश्य नहीं है। कर्मयोग का वास्तविक प्रयोजन है, आत्मशुद्धि का एक साधन उपलब्ध कराना।

जब आप काम नहीं कर रहे होते हैं तब मन उच्छृंखल होकर व्यर्थ के विचारों में भागता रहता है। वह पिंजड़े में बन्द बन्दर के समान व्यवहार करता

है, ऊपर-नीचे, इधर-उधर, कुछ भी उपयोगी या सार्थक नहीं करता। यह ऊर्जा का बिखराव मन में अनावश्यक संस्कार उत्पन्न करता है और मन में दिवास्वप्न देखने की आदत पैदा करता है। फिर असंख्य संस्कार संचित हो जाते हैं, और जब आप ध्यान करना चाहते हैं या जब कुण्डलिनी जाग्रत होती है तब इन सभी संस्कारों में विस्फोट होता है और मानसिक पृष्ठभूमि प्रदूषित हो जाती है। अतएव कर्मयोग का प्रयोजन मन को अकर्मण्य, आवारा बनने से रोकना है। यदि मन को कर्मयोग द्वारा समुचित ढंग से व्यस्त रखा जाए तो कुछ समय के बाद वह शुद्ध और परिष्कृत हो जाता है।

आश्रमों के बहुत-से अन्तेवासी पद, प्रतिष्ठा और शक्ति के कारण भ्रष्ट हो जाते हैं। सचिव, निदेशक, प्रभारी, रोकड़पाल और लेखापाल आदि पदों में वे इतने खो जाते हैं कि उन्हें यह याद नहीं रहता कि वे आश्रम क्यों आये हैं। निश्चित रूप से वे आश्रम में कर्म संचित करने नहीं आये हैं। आश्रम तो ऐसा स्थान माना जाता है जहाँ आप मुक्त होने के लिए आते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि कर्म के प्रति सही भाव रहे।

जब मैं पहली बार अपने गुरु-आश्रम आया था तो मैं भी नहीं जानता था कि कर्मयोग क्या है। उसके विषय में मैंने पढ़ा था पर उसका अनुभव नहीं था। तथापि, मैंने अपने को आश्रम के कार्यों में पूरी तरह लगा दिया और कुछ वर्षों में मैंने पाया कि मैं दिन में जो कार्य करता था उससे मेरे रात के ध्यान की गुणवत्ता बढ़ गयी थी। वस्तुत: आश्रम में आने के पूर्व मुझे ध्यान करने में समस्या होती थी। ध्यानाभ्यास की एक विशेष अवस्था के बाद मेरे सामने एक पर्दा आ जाता था जिसके आगे मैं नहीं जा पाता था। ऐसा प्रतीत होता था कि मेरे अनुभव एक बन्द गली में पहुँच कर थम जाते थे। मैं नहीं जानता था कि क्या किया जाए।

मैंने अनेक व्यक्तियों से इस विषय में परामर्श भी मांगा, पर कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला। जब मैं स्वामी शिवानन्दजी से मिला तो मैंने उनसे यही पहला प्रश्न पूछा। उन्होंने कहा, आश्रम में रहो, कठोर परिश्रम करो और स्वयं को शुद्ध करो। मैंने तत्काल काम करना प्रारम्भ कर दिया। मैं रसोई के सारे बर्त्तन साफ करता, गंगा से पानी भरकर ऊपर पहाड़ पर लाता, इंटें और जलावन इकट्ठा करता, टाईपिंग करता, निर्माण कार्य देखता और पाँच मील चलकर बाजार जाता और सब्जियाँ सिर पर उठाकर लाता। इस अवधि में मैं प्रतिदिन रात के 9 बजे तक काम करता। उसके पश्चात् स्नान कर गंगा के किनारे ध्यान में बैठ जाता। मैं मंत्र जप करता और मेरा अन्त:करण सदा प्रकाशित रहता था। न कोई विचार आता न संस्कार, मेरे लिए न भूत रहता था न भविष्य। मैं स्वयं भी नहीं रहता था, केवल मंत्र शेष रहता। यह स्वप्न के समान था। जब तक मैं समझता, सुबह के 3-4 बज जाते थे। मैं रंचमात्र भी नहीं सोता था। अनेक महीनों तक यही चलता रहा, परन्तु मैं यह भी नहीं जानता था कि मैं सोता नहीं हूँ।

आज जब मैं उस समय के विषय में सोचता हूँ तो आश्चर्य में पड़ जाता हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं पागल नहीं था, लेकिन मैं कैसे सारी रात पद्मासन में बिना सोये बैठा रह जाता था जबकि दिनभर मैं कड़ी मेहनत करता था। हमलोग उन दिनों न्यूनतम भोजन पर निर्वाह करते थे। आश्रम में केवल भूख मिटाने के लिए भोजन होता था, और कुछ नहीं। न कोई मिनरल, न विटामिन, न प्रोटीन, पर मेरी शारीरिक ऊर्जा इतनी उत्तम थी कि यदि मुझे साठ मील भी दौड़ना पड़ता तो मैं दौड़ जाता।

आश्रम जीवन एक स्वप्न की तरह होता है, बड़ा प्रिय स्वप्न, जो बड़े अप्रिय ढंग से बीतता है। नहीं, अप्रिय नहीं, बहुत असुविधाजनक रूप से बीतता है। यदि आश्रम कर्मयोग पर बल न दे तो वह किसी की सहायता नहीं कर सकता। कर्मयोग आध्यात्मिक जीवन रूपी भवन की नींव है, भक्तियोग उस भवन की छत-दीवार और राजयोग उसका पलस्तर व साज-सजावट है। जब तक नींव दृढ़ नहीं होगी तब तक आप सुन्दर घर नहीं बना सकते। पलस्तर और सजावट पर्याप्त नहीं है। इसलिए सदियों से आश्रम एक ऐसा स्थान रहा है जहाँ गुरु और शिष्य कड़ी मेहनत करते हैं।

आश्रम घर जैसा आराम देने के लिए नहीं होते। शहर के जीवन से आश्रम का जीवन भिन्न होना ही है। आपके पास न्यूनतम सामान होना चाहिए और आपमें सामुदायिक जीवनशैली को अपनाने की क्षमता होनी चाहिए। ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा नहीं होनी चाहिए, यद्यपि स्वस्थ एवं सकारात्मक प्रतिस्पर्धा को स्वीकार किया जा सकता है, जैसे, 'वह दिन में बारह घंटे काम करता है, मैं सोलह घंटे काम करूँगा। वह स्वामी बहुत कम बोलते हैं, मैं उनसे भी कम बोलूँगा। वह दिन में दो बार भोजन करती है, मैं अब एक बार ही भोजन करूँगा।' यह स्वस्थ प्रतिस्पर्धा है जो स्वामियों को प्रेरित करती रहती है, लेकिन दूसरे प्रकार की स्पर्धा नकारात्मक है, 'वह डबलरोटी खा रहा है, मैं भी यह खाऊँगा और मैं उस पर मक्खन भी डाल लूँगा। उसके पास चार धोतियाँ हैं, मैं छ: लूँगा।' ये आश्रम जीवन की कुछ हास्यस्पद बातें हैं और मैं जानता हूँ आश्रम के सभी संन्यासियों एवं अन्तेवासियों को ऐसे अनुभव हुए होंगे!

प्राण और प्राणायाम

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

प्राणायाम के प्राचीन योगाभ्यासों की जानकारी भारत में 5000 वर्षों से भी पहले से रही है। महाभारतकालीन भगवद्गीता में प्राणायाम का उल्लेख यह सूचित करता है कि उस काल में प्राणायाम के अभ्यास उतने ही प्रचलित थे जितने कि यज्ञ। बौद्ध काल के पूर्व लिखे गये अनेक उपनिषदों में भी प्राणायाम की विधियों का उल्लेख किया गया है। तथापि इन अभ्यासों का विस्तृत विवरण छठी से पंद्रहवीं शताब्दी के बीच लिखे गये हठ योग के ग्रन्थों, जैसे, हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता एवं हठरत्नावली में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय मौखिक परम्परा के माध्यम से हस्तान्तरित किये जा रहे उन अभ्यासों को पुनरुज्जीवित और सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता अनुभव हुई। बौद्ध धर्म के उदय के साथ ही वैदिक संस्कृति का ह्रास होने लगा और अनेक यौगिक अभ्यास या तो विलुप्त हो गये या अभ्यासियों द्वारा उनका दुष्प्रयोग होने लगा। इसलिए उस समय के ग्रन्थकारों ने अभ्यासों की शुद्धता और प्रामाणिकता को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया।

इक्कीसवीं शताब्दी में इन अभ्यासों के उद्देश्य और ज्ञान को पुन: स्थापित करने की आवश्यकता को फिर से अनुभव किया जा रहा है। पिछले कुछ दशकों में हुए योग के पुनर्जागरण ने आसन और प्राणायाम को घरेलू शब्दावली का हिस्सा बना दिया है। किन्तु अधिकतर साधक न तो अभ्यासों के सार को समझ पाये हैं और न ही उनकी गहराई तक जा पाये हैं। सिद्ध ऋषियों के ज्ञान को वर्तमान युग हेतु उपयुक्त भाषा एवं पद्धति में योग साधकों के बीच लाना सत्यानन्द योग का उद्देश्य तो रहा ही है, इस क्षेत्र में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान भी रहा है। यह हमारे गुरुओं, स्वामी शिवानन्द जी एवं स्वामी सत्यानन्द जी का उपहार और आशीर्वाद भी है।

प्राण का सिद्धान्त

उपनिषदों में एक कथा आती है। एक बार शरीर के अंदर वास करने वाले सभी देवताओं – वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश, वाणी तथा मन में वाद-विवाद छिड़ गया। यह घोषणा करते हुए कि मैं ही इस नश्वर शरीर को जीवित रखता हूँ, प्रत्येक ने स्वयं के सर्वश्रेष्ठ होने का दावा किया। प्राण उनकी इस बहस को सुन रहा था। उसने अंत में उन सब से कहा, 'आप स्वयं को भ्रम में न रखें। मैं ही स्वयं को पाँच भागों में विभक्त कर इस शरीर को जीवित रखता हूँ।' देवताओं को उस पर विश्वास नहीं हुआ। प्राण ने स्वयं को शरीर से खींचना आरंभ कर दिया। अन्य देवताओं ने स्वयं को भी तत्काल निष्कासित हुआ अनुभव किया। जब प्राण ने पुन: शरीर में

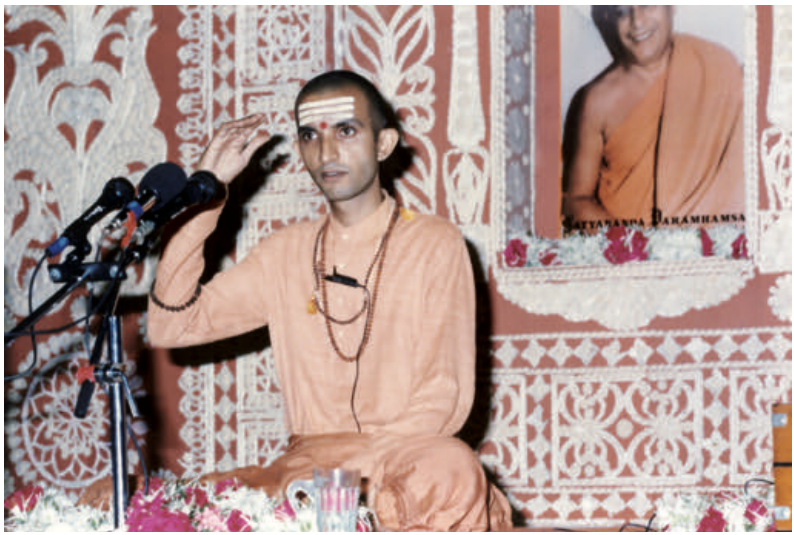

प्रवेश किया, तब देवताओं ने पाया कि वे भी अपनी-अपनी जगहों पर पहुँच गये हैं। प्राण की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लेने के बाद वे उसके सम्मुख नतमस्तक हो गये।

प्राण न केवल शरीर को जीवित रखने वाली जीवनी शक्ति है, बल्कि यह प्रत्येक स्तर पर सृजन भी करता है। भारत के मनीषियों ने हमेशा इस तथ्य को जाना और समझा है, जिसे आज आधुनिक विज्ञान भी समझने का प्रयास कर रहा है। योग की प्रत्येक शाखा का उद्देश्य होता है मनुष्य के अंदर स्थित उस प्राणशक्ति को जाग्रत करना और उसका विस्तार करना।

संस्कृत शब्द 'प्राण' दो अक्षरों, 'प्रा' एवं 'ण' से बना है, जिसका तात्पर्य उस शक्ति से है जो निरंतर गतिमान हो। प्राण सभी सचेतन प्राणियों में ऊर्जा के रूप में उनकी प्रत्येक ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रिया, प्रत्येक विचार, मन और शरीर के प्रत्येक स्तर पर विद्यमान होता है। वैज्ञानिक शोध प्राण का वर्णन एक बहुआयामी जटिल ऊर्जा के रूप में करते हैं जो विद्युत् चुम्बकीय, प्रकाशकीय, ऊष्मीय तथा मानसिक जैसी अनेक ऊर्जाओं का सम्मिश्रण है।

प्राण अचेतन जगत् में भी विद्यमान रहता है, इस स्तर पर यह गति, वृद्धि और क्षय का कारण बनता है। वास्तव में प्राण व्यक्त जगत् का आधार है। यह शक्ति आदि चेतना की सृजन करने की 'आद्य इच्छा' के रूप में प्रकट हुई है। छान्दोग्य उपनिषद् (1:11:5) में कहा गया है –

सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि।
प्राणमेवाभिसंविशंति प्राणमभ्युज्जिहते ॥

अर्थात् प्रलय काल में सभी जड़-चेतन प्राणी प्राण में विलीन हो जाते हैं और सृजन काल में उत्पन्न होते हैं।

प्राणमय कोश

प्रत्येक प्राणी के सम्पूर्ण शरीर में प्राण जिस प्रकार व्याप्त रहता है उसे योगी भौतिक शरीर से सूक्ष्म अस्तित्व वाला प्राणमय कोश कहते हैं। इस प्राणिक क्षेत्र के अस्तित्व को आधुनिक विज्ञान ने भी प्रमाणित किया है। विशेषतया किर्लियन फोटोग्राफी की अति संवेदनशील पद्धति द्वारा न केवल मनुष्यों में, बल्कि निर्जीव वस्तुओं के चारों ओर भी एक प्रभामण्डल के अस्तित्व को देखा गया है। यह भी पाया गया कि प्राणी की दशा के अनुसार प्रभामण्डल में परिवर्तन हुआ। यह प्रभामण्डल आंतरिक रूप से मन और बाह्य रूप से विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्रों द्वारा प्रभावित होता है।

प्राणिक शरीर में प्राण नाड़ियों के माध्यम से प्रवाहित होता है, और ऊर्जा के भँवररूपी चक्रों में संचित रहता है। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार प्राण की विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा विकिरण उत्पन्न करती है, जिसमें विद्युत् एवं चुम्बकीय ऊर्जाएँ एक-दूसरे के साथ समकोण पर होती हैं, जो फलस्वरूप सर्पिलाकार दिखती हैं। वास्तव में चक्रों के चारों ओर सर्पिलाकार या कुण्डलित संरचना का अलग-अलग वर्णन और चित्रण विश्व के सभी भागों के ऋषियों तथा विद्वानों द्वारा किया जा चुका है।

प्राणियों में प्राण जन्मजात होता है। हम प्राण की एक निश्चित मात्रा के साथ जन्म लेते हैं और इसे कायम रखते हैं, बढ़ाते या कम करते हैं, उस वायु के माध्यम से जिसे हम श्वास में ग्रहण करते हैं, उस भोजन के द्वारा जो हम खाते हैं, उन विचारों के द्वारा जिन्हें हम सोचते हैं, उन क्रियाओं के द्वारा जो हम करते हैं और उस जीवनशैली से जिसे हम जीते हैं। जब हमारी मृत्यु होती है तब संचित प्राण शरीर को छोड़ जाता है।

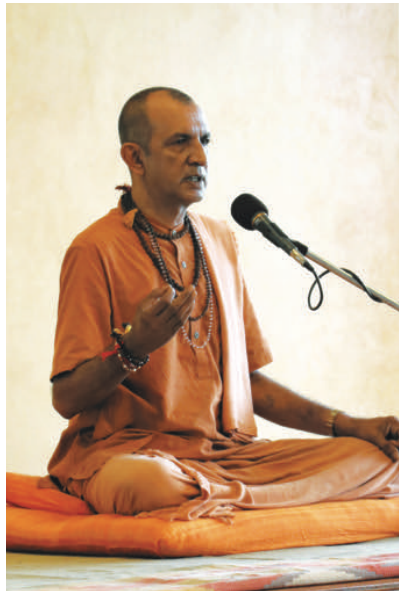

प्राणायाम

प्राणायाम के विज्ञान का विकास सिद्धि के शिखर पर पहुँचे योगियों द्वारा अपने अंतर्ज्ञान और अनुभव के आधार पर किया गया है। श्वसन क्रिया का उपयोग

प्राणिक क्षेत्र में जाने के लिए, शारीरिक संतुलन प्राप्त करने के लिए और मन को नियंत्रित करने के लिए किया गया। इन विधियों के द्वारा शरीर और मन रूपी उपकरण को चेतना की उच्च अवस्थाओं तक पहुँचने योग्य बनाया गया ताकि अंततोगत्वा परमात्म तत्त्व के साथ एकात्म होने की अनुभूति प्राप्त हो सके।

चूँकि श्वास प्राणायाम का माध्यम है, इसलिए इसकी विधि श्वसन की तीन अवस्थाओं पर आधारित है – पूरक (श्वास लेना), कुम्भक (श्वास रोकना) और रेचक (श्वास छोड़ना)। इन अवस्थाओं के क्रमपरिवर्तन तथा नियंत्रण के द्वारा प्राणायाम के विभिन्न अभ्यास बनते हैं। वास्तव में देखा जाए तो प्राणायाम केवल कुम्भक है। महर्षि पतंजलि के योगसूत्रों में कहा गया है (2:49) –

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गति को अवरुद्ध कर उसे सुदृढ़ करना ही प्राणायाम है। पूरक और रेचक की विधियाँ कुम्भक को प्रवृत्त करती हैं। कुम्भक करना ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही प्राण को आत्मसात् करने की वास्तविक अवधि होती है। इसी प्रक्रिया में कोशिकाओं के अंदर ऑक्सीजन और कार्बन डायक्साइड को आदान-प्रदान का अधिक समय मिल पाता है। चूँकि श्वास का शरीर की विविध क्रियाओं और उसके अंगों के अतिरिक्त मन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए श्वास को नियन्त्रित कर हम इन सभी आयामों को प्रभावित कर सकते हैं।

प्राणायाम के प्रारम्भिक अभ्यास प्राणिक शरीर के अंदर स्थित नाड़ियों को

शुद्ध करते हैं। शास्त्रों में बताया गया है कि प्राणिक शरीर में 72,000 नाड़ियाँ और छः प्रमुख चक्र हैं। एक सामान्य व्यक्ति की अनेक नाड़ियाँ अवरुद्ध रहती हैं और चक्रों से आंशिक ऊर्जा ही निर्मुक्त होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हम ऊर्जा, मन और चेतना से सम्बन्धित अपनी अंतःशक्तियों का पूरा उपयोग नहीं करते हैं। शारीरिक या मानसिक स्तर पर हम जिन नकारात्मक स्थितियों का अनुभव करते हैं, वे ही अवरोधों के कारण भी हैं और उनके परिणाम भी। हमारी नाड़ियों एवं चक्रों की दशा हमारे संस्कारों के अतिरिक्त पुरुषार्थ तथा अनुग्रह से निर्धारित होती

है। प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियाँ धीरे-धीरे मुक्त होती हैं और उनमें प्राण का प्रवाह निर्बाध रूप से होने लगता है।

अभ्यास के उच्च स्तरों पर प्राण के प्रवाह की दिशा प्रभावित होती है और चक्रों से अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा निर्मुक्त होती है। जब ये प्रक्रियायें सक्रिय हो जाती हैं तब अनेक नयी अनुभूतियाँ होने लगती हैं। साधकों को इन अवस्थाओं से होकर आगे ले जाने के लिए कुशल मार्गदर्शन नितांत आवश्यक है।

स्मरण रहे कि प्राणायाम यूँ ही किया जाने वाला योग का अभ्यास नहीं है। अष्टांग योग पद्धति में यम एवं नियम, षट्कर्म एवं आसनों के लम्बे अभ्यास के बाद इसे किया जाता है और इसके बाद प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास होता है। स्थूल से सूक्ष्म, अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश की ओर संतुलित और क्रमिक गति ही इसका उद्देश्य है। हठयोग प्रदीपिका (1:67) में कहा गया है –

पीठानि कुंभकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च।
सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधि:॥

अर्थात् राजयोग में सफलता प्राप्त होने तक हठयोग पद्धति के आसन, विभिन्न प्रकार के कुम्भक (प्राणायाम) और प्रबोधित करने वाली अन्य विधियों का अभ्यास करते रहना चाहिए।

इस संदर्भ में प्राणायाम का उद्देश्य है, प्रत्याहार में पूर्णता प्राप्त करना। पारम्परिक ग्रन्थों में इसका वर्णन केवल इंद्रियों के प्रत्याहार के रूप में नहीं, बल्कि उस अवस्था के लिए किया गया है जहाँ प्रत्येक संवेदी निवेश को हम परमात्मा की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं और अपनी प्राणिक क्षमता को इतना विस्तृत कर चुके होते हैं कि हम अपनी श्वास को तीन घंटों तक रोक सकते हैं। शिव संहिता (3:57) में कहा गया है –

याममात्रं यदा धर्त्तुं समर्थ: स्यात्तदाद्भुत:।
प्रत्याहारस्तदैव स्यान्नांतरा भवति ध्रुवम् ॥

अर्थात् जब कोई श्वास को तीन घंटों तक रोक सकता है, तब निश्चित रूप से बिना किसी त्रुटि के प्रत्याहार की अद्भुत अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है।

वस्तुत: योग का अभ्यास तब आरम्भ होता है जब हम प्राणायाम की शृंखला में प्रवेश करते हैं। आसनों के अभ्यास के साथ हम शरीर को नियंत्रित करने वाली ऊर्जाओं को सम्हालने योग्य हो जाते हैं। श्वास के माध्यम से प्राणायाम के द्वारा शरीर के अंदर हम सूक्ष्म शक्ति की सजगता का विकास करते हैं, और मन को सूक्ष्म क्रियाओं के प्रति सजग होने का निर्देश देना ही योग की शुरुआत है।

साधक का गीत

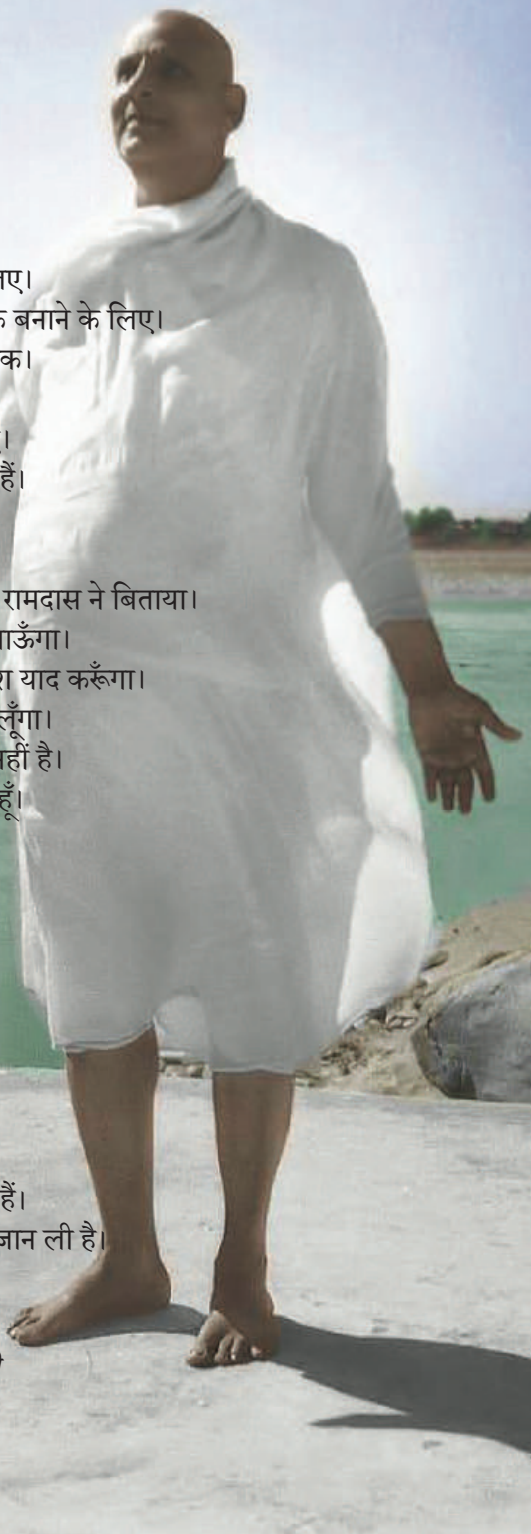

मैं हर दिन एक नयी चीज सीखूँगा।
मैं हर दिन एक शुभ कर्म करूँगा।
मैं नित्य आसन करूँगा तमस् हटाने के लिए।
मैं सूर्य-नमस्कार करूँगा आलस्य भगाने के लिए।
मैं सद्गुणों का अभ्यास करूँगा मन को सात्त्विक बनाने के लिए।
मैं मन को बनने न दूँगा नकारात्मक या तामसिक।
मैं सदा सावधान और संलग्न रहूँगा।
मैं सदा आगे बढ़ूँगा जीवन-लक्ष्य पाने के लिए।
मैं सदा उसमें न रमूँगा, जिसमें सांसारिक रमते हैं।
मैं अपने मन को उनकी नकल न करने दूँगा।
मैं उस मार्ग पर चलूँगा जिस पर बुद्ध गये हैं।
मैं वैसा जीवन बिताऊँगा जैसा कबीर, नानक, रामदास ने बिताया।
मैं भीष्म, शंकर और दत्तात्रेय का आदर्श अपनाऊँगा।
मैं भगवान बुद्ध तथा पैगम्बर मुहम्मद के उपदेश याद करूँगा।
मैं भगवान कृष्ण तथा व्यास के उपदेशों पर चलूँगा।
मैं असावधान बन कर ऐसा न कहूँगा, खतरा नहीं है।
मैं मूढ़ बन कर ऐसा न कहूँगा, मैं पूर्ण सुरक्षित हूँ।
मैं सभी दिशाओं से स्वयं को बचाऊँगा।
माया के सूक्ष्म कार्यों से किलेबन्दी करूँगा।
अविद्या के प्रभोलनों से बचने के लिए,
मैं शक्तिपूर्वक अपनी रक्षा करूँगा।
भविष्य में ऐसा न कहूँगा कि
एक बार के लिए ही इसका उपभोग करूँगा।
यह एक बार बढ़कर हजार बार हो जायेगा।
यह एक बार मुझको अन्धी खाई में गिरायेगा।
मैं शुभ कर्म में विलम्ब न करूँगा।
सुअवसर एक बार आते तथा शीघ्र चले जाते हैं।
ईश्वर और गुरु की कृपा से मैंने माया की चाल जान ली है।
मैं कठिन तप तथा ध्यान करूँगा।
मैं अपने संकल्प दृढ़ बनाऊँगा।

– स्वामी शिवानन्द सरस्वती

संयम और अनुशासन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

संसार में रहते हुए हम वृत्तियों के अधीन रहकर अपने जीवन के सभी कर्मों का निर्वाह करते हैं। लेकिन यह देखा गया है कि प्राय: हर संसारी व्यक्ति के जीवन में संयम और अनुशासन का अभाव रहता है। जीवन में जो भी होता है वह अपने मन की मर्जी मुताबिक होता है। जब मन की मर्जी अनुसार कुछ नहीं होता तब फिर दु:ख, कष्ट और ग्लानि होती है। हमलोगों को यह जानना है कि किस प्रकार प्रवृत्ति-मार्ग पर चलते हुए भी हम अपने जीवन में संयम और अनुशासन ला सकते हैं। प्रवृत्ति-मार्गियों के लिए, सांसारिक मनुष्यों के लिए संयम और अनुशासन प्राप्त करना जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होती है।

संयम का अभ्यास

संयम के अंतर्गत वाणी संयम, मन संयम और इन्द्रिय संयम आते हैं, जिनका अभ्यास हर एक व्यक्ति को करना चाहिए।

वाणी में सत्यता और प्रियता – वाणी संयम के लिए सत्यता और प्रियता को आधार बनाया जाता है। जब तक वाणी में सत्यता और प्रियता है, तब तक वाणी में ऊर्जा होती है, वाणी शुद्ध होती है और वाणी स्वयं तथा दूसरों के उत्थान के लिए प्रयोग में लायी जाती है। वाणी में प्रयुक्त शब्द ऊर्जा के स्पंदन होते हैं। इन तरंगों का मस्तिष्क, मन और भावनाओं पर असर पड़ता है। शब्दों के खेल से मनुष्य सुख या दु:ख की अनुभूति प्राप्त करता है। शब्दों में शक्ति होती है। इस वाक्-शक्ति को सत्य और प्रिय वचनों द्वारा बढ़ाया जाता है। इसलिए वाणी संयम में सत्यता और प्रियता, ये दो आधार बनते हैं।

जीवन में असत्यता और अप्रियता तब आती है जब हम तामसिक और राजसिक वृत्तियों के चंगुल में फँस जाते हैं। प्रारम्भ में सत्यता और प्रियता लाना कठिन हो सकता है, लेकिन यही वे साधन हैं जो तुम्हारे शब्दों को सशक्त और प्रभावी बनाते हैं, तुम्हारी वाणी में संयम लाते हैं।

सत्त्व का अन्वेषण – मन हर व्यक्ति के लिए अनुभव का एक बहुत ही सूक्ष्म एवं व्यापक क्षेत्र होता है। इस सूक्ष्म, व्यापक क्षेत्र में चार प्रकार की मानसिक अवस्थाओं को हम देखते हैं। मन का पहला आयाम है सामर्थ्य और प्रतिभा का। ये सत्त्वगुण के परिचायक हैं। जो व्यक्ति जितना प्रतिभावान् एवं सामर्थ्यवान् होता है, वह अपने जीवन में उतना ही स्वतंत्र व्यवहार और विचार लेकर चलता है और उस स्वतंत्र विचार तथा व्यवहार में विवेक की झलक दिखलाई देती है। इसलिए

प्रतिभा और सामर्थ्य हमारे जीवन में सत्त्वगुण के परिचायक होते हैं और मन की इस प्रतिभावान् अवस्था को जानना मानसिक संयम के लिए पहला प्रयास है।

दैनिक जीवन में सत्त्व का अभ्युदय तब होता है जब तुम सकारात्मक गुणों और प्रतिभाओं से जुड़ते हो। योग में हमेशा कहा गया है कि नकारात्मक और प्रतिबन्धक चीजों के बारे में सोचने के बजाय सकारात्मक और सात्त्विक चीजों के साथ नाता जोड़ो। इससे तुम्हारी चेतना स्थूल से सूक्ष्म होती जाएगी। सामर्थ्यों और प्रतिभाओं का विकास वास्तव में सात्त्विक स्वभाव का विकास ही है।

तमस् की पहचान – दूसरी प्रकार की मानसिक अवस्था में मनुष्य अपनी कमजोरियों और सीमाओं का ज्ञाता होता है। कमजोरियों और सीमाओं का ज्ञान तमोगुण का ज्ञान है। व्यक्ति को जानना चाहिए कि मेरी कौन-कौन सी कमजोरियाँ और सीमाएँ हैं, जिनके कारण मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता हूँ। सुख और शांति की कामना करता हूँ पर उसे प्राप्त नहीं कर पाता हूँ। अच्छाई को जब मनुष्य प्राप्त नहीं कर पाता है तो उसका एक ही कारण होता है – तामसिकता की चपेट में वह अपने सामर्थ्य को भूल जाता है। कमजोरियाँ प्रबल हो जाती हैं और सामर्थ्य दुर्बल पड़ जाता है।

इसलिए कमजोरियों की पहचान जरूरी है। साथ ही सामर्थ्यों और प्रतिभाओं का पोषण भी जरूरी है। जहाँ एक ओर अपनी सीमाओं और कमजोरियों को पहचानना, अपने स्वभाव पर तमस् की पकड़ को समझने के लिए जरूरी है, वहीं सकारात्मक गुणों का विकास वह साधना है जिसका हमें अपने जीवन में अभ्यास करना है।

रजस् की प्रबलता को जानना – मानसिक संयम के लिए तीसरा प्रयास अपनी महत्त्वाकांक्षाओं और वासनाओं को जानना है, क्योंकि इनका जन्म रजोगुण से होता है। रजोगुण ही मन में अनेक कामनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को जन्म देता है और समय-समय पर हर व्यक्ति को इन महत्त्वाकांक्षाओं का भी अवलोकन करना चाहिए कि इनमें क्या प्राप्य है, और क्या अप्राप्य। इसका ज्ञान होना जरूरी है क्योंकि बहुत बार अप्राप्य महत्त्वाकांक्षाओं को ही हम अपने जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं और इसीलिए कभी भी हम अपनी यात्रा को पूर्ण नहीं कर पाते हैं। लेकिन अगर प्राप्य महत्त्वाकांक्षाओं को लेकर चलें तो निश्चित रूप से जो चाहते हैं उसको प्राप्त करते हुए आगे बढ़ सकते हैं।

मन की चौथी स्थिति, जिसमें तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं, आवश्यकताओं और जरूरतों की है। हर व्यक्ति की आवश्यकता सीमित है – रोटी, कपड़ा और मकान। जब व्यक्ति रोटी, कपड़ा और मकान के लिए विवेक-बुद्धि से प्रयास करता है, तब उस समय सभी गुण साम्यावस्था में रहते हैं।

मानसिक संयम के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी प्रतिभाओं, सीमाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और आवश्यकताओं, इन चारों को भली-भाँति समझ

लें और इनको समझ लेने के बाद फिर जो अपनाने योग्य है उसे हम अपनाएँ और जो अनावश्यक है उसे हम छोड़ दें। अपनाना और छोड़ना, ये दो क्रियाएँ होती हैं मन को संयमित करने के लिए। जो अपनाने योग्य है, जिससे मनुष्य का उत्थान होता है, उसे अपनाना है और जो बुराई है, जो खराबी है, उसे छोड़ देना है। इतना करने से मन और विचारों में संयम की प्राप्ति होती है। लेकिन इस प्रक्रिया को करने के लिए ध्यान की अवस्था में प्रवेश करना होगा। और यह जो ध्यान है वह कोई प्रत्याहार या धारणा की विधि नहीं जैसे योग में सिखायी जाती है। यह ध्यान आत्म-निरीक्षण, आत्म-परीक्षण और आत्म-अन्वेषण की प्रक्रिया है, अपने आप को जानने का तरीका है, अपने आप को समझने की विधि है। ध्यान की अवस्था में मन के इन चार व्यवहारों को जानना मानसिक संयम का आधार बनता है।

प्रतिपक्ष-भावना – तीसरे प्रकार का संयम है इन्द्रिय संयम। हमारी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ हमेशा सुख और तृप्ति की खोज करती हैं। आँखों को वह देखना पसंद है जिसमें उनको सुख मिलता है, कानों को वह सुनना पसंद है जिसमें उनको सुख मिलता है, जीभ को वह स्वाद पसंद है जिसमें उसको सुख मिलता है। इस प्रकार से इन्द्रियों का काम हमेशा सुख की खोज रहता है। ये इन्द्रियाँ ही मनुष्य के चित्त को भ्रमित करती हैं। जब कोई इन्द्रिय किसी विषय-वस्तु से जुड़ती है, तब उसकी कामना उत्पन्न होती है और उससे मन की शांति समाप्त हो जाती है।

इन्द्रिय निग्रह के लिए एक विपरीत विचार को अपने मन में लाना आवश्यक हो जाता है, जिसे योग की भाषा में प्रतिपक्ष-भावना कहते हैं। मुझे अमुक चीज देखने में सुख मिलता है, मन में यह पहला विचार आता है। प्रतिपक्ष-भावना को जब हम लाते हैं तब अपने आप से कहते हैं कि दूसरी चीज को भी देखने में सुख मिलता है, केवल इसमें नहीं। मुझे इस भोजन में स्वाद मिलता है, मैं इसकी कामना करता हूँ। प्रतिपक्ष-भावना में दूसरा विचार आता है कि मुझे दूसरे आहार में भी स्वाद मिलता है। विपरीत विचारों को लाकर हम इन्द्रियों को संभालने में सक्षम हो जाते हैं और इस प्रकार जीवन में संयम आता है।

व्यक्तिगत अनुशासन

संयम का सहायक होता है अनुशासन। अनुशासन का भी हमारे जीवन में अभाव है और अनुशासन के अभाव में जिंदगी केवल मन-मर्जी की ही रहती है। जो इच्छा हो सो करो, जिसकी इच्छा न हो मत करो – यह मन-मर्जी बतलाती है कि जीवन में अनुशासन का अभाव है, क्योंकि अनुशासन का मतलब होता है जीवन में एक व्यवस्था को लाना जिसके द्वारा हमारा शरीर, मन, बुद्धि, भावना और ऊर्जायें स्वस्थ रहें। विशेषकर सोने और खाने की निश्चित व्यवस्था होनी चाहिए। अगर तुम इन दोनों को व्यवस्थित कर सकते हो तो जीवन के सभी असंतुलन समाप्त हो जाएँगे। तुम कब सोते हो, कब जागते हो, क्या खाते हो, कब खाते हो – इसके लिए समय और नियम निश्चित कर लो। इस प्रकार की प्रणाली के साथ शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर लाभदायक अभ्यासों को करने से तुम्हारा जीवन निश्चित रूप से अनुशासित होगा।

अनुशासन के लिए मनीषियों ने जिस पद्धति का आविष्कार किया वह पद्धति है योग। योग के द्वारा शरीर के विकारों को दूर कर शरीर में स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। मन के तनावों को दूर कर मन में शांति की प्राप्ति होती है, भावनाओं की उत्तेजना को शांत कर उनको निर्मल बनाया जाता है, प्राणों की चंचलता को शांत कर प्राणों को एक बिन्दु पर केंद्रित किया जाता है और इस प्रकार जब हमारे शरीर, मन, भावना, प्राण, आदि सब एक विधि के द्वारा नियंत्रित होते हैं तो उनके विकार और रोग अपने आप दूर होते हैं और मनुष्य उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त करता है।

तीन मंत्रों का जप – अगर व्यक्ति अपने सामान्य जीवन में कुछ अनुशासन को प्राप्त करना चाहता है तो उसे एक विधि का अनुसरण करना चाहिए। पहली बात, सबेरे उठने पर चुप-चाप पाँच मिनट के लिए आँखों को बंद करके बैठ जाओ। महामृत्युंजय मंत्र, गायत्री मंत्र और दुर्गा जी के बत्तीस नाम – इन तीन मंत्रों का जप प्रात:काल उठते ही हर व्यक्ति को करना चाहिए। समाज में तो मान्यता है कि आराधना करने के पहले नहा लेना चाहिए या कम-से-कम हाथ-मुँह धो लेना चाहिए, और उसके बाद आराधना में संलग्न होना चाहिए। लेकिन यह आवश्यक नहीं। अगर हम प्रार्थना या आराधना अपने नित्यकर्मों से निवृत्त होकर करते हैं, तो मन उस समय तक बहिर्मुखी हो जाता है।

मन में संकल्प शक्ति को बढ़ाने के लिए, मन की सृजनात्मक क्षमता की वृद्धि के लिए जरूरी है कि मंत्र का पाठ उस समय होना चाहिए जब मन अर्द्धचेतन अवस्था में रहता है, पूर्ण चेतन नहीं हुआ रहता। अर्द्धचेतन स्थिति कब आती है? जैसे ही नींद खुलती है तब। मनुष्य का अर्द्धचेतन मन बहुत ही शक्तिशाली तत्त्व है क्योंकि संकल्प-शक्ति का विकास मन के इसी आयाम में होता है। इस अर्द्धचेतन अवस्था में मन न सोया है न जगा है, और उस समय जो भी चिंतन या विचार आपके भीतर प्रवेश करेगा वह एक संकल्प का रूप लेगा और आपके जीवन में परिवर्तन को लाएगा।

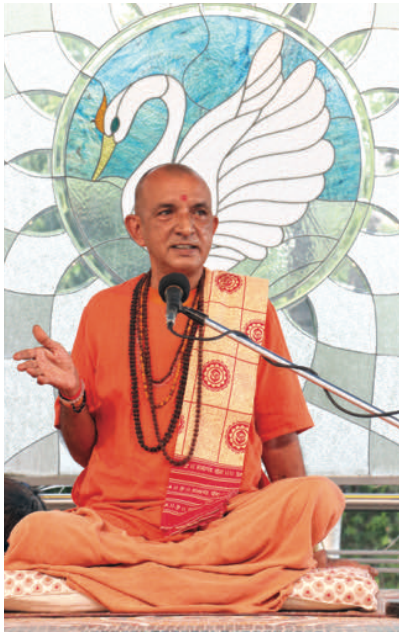

इसीलिए सुझाव दिया जाता है कि जैसे ही नींद से जगते हो, बिस्तर पर ही पाँच मिनट के लिए आँखों को बंद करके शांति से बैठ जाओ और अपने लिए स्वास्थ्य का संकल्प लेकर ग्यारह बार महामृत्युंजय मंत्र का जप करो। उसके बाद अपने जीवन में प्रतिभा और विवेक का संकल्प लेकर ग्यारह बार गायत्री मंत्र का जप करो। फिर स्वयं को जीवन की दुर्दशा और दुर्गति से मुक्त रखने के लिए, सुख, शांति और समृद्धि के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए, दुर्गा जी के बत्तीस नामों का तीन बार पाठ करो। सात से दस मिनट के बीच आप अपने अर्द्धचेतन मन को ऐसा संकल्प देते हो जो आपकी जाग्रत अवस्था में भी और निद्रा की स्थिति में भी मन की दृढ़ता और ऊर्जा को बढ़ाता है।

अपने जीवन और मन में एक सकारात्मक चिंतन को लाने के लिए यह आवश्यक है। नहीं तो होता क्या है कि उठते ही सबसे पहले हाथ जाता है अखबार की ओर या टेलिविजन ऑन करने की ओर ताकि हम समाचार देखें। जो समाचार हम प्रात:काल देखते या पढ़ते हैं वह हमारे इस अर्द्धचेतन मन को प्रभावित करता है और फिर मन में दिनभर चंचलता का वास होने लगता है, नकारात्मक विचारों का आना आरम्भ हो जाता है। दिन में एक समय तो ऐसा होना चाहिए जब मनुष्य अपनी प्रतिभा से सम्बन्ध जोड़े और वह सम्भव हो पाता है प्रात:काल इन तीन मंत्रों के पाठ के दौरान। सकारात्मक एवं सात्त्विक चिंतन को लाने के लिए, अपने मन में संकल्प शक्ति को बढ़ाने के लिए मंत्रों का यह अनुशासन आवश्यक है। सबेरे तुम अपने भीतर जिस सकारात्मक चेतना को जगाओगे, वह दिनभर के क्रियाकलापों को निर्देशित करती रहेगी। यह तुम्हारे मन को निराशा, चिन्ता या विषाद के अन्धकार में गिरने से बचाएगी। इसलिए व्यक्तिगत अनुशासन के क्रम में पहला अभ्यास मंत्रों का है, जिसके द्वारा हम दिनभर मानसिक सकारात्मकता, संतुलन और सामंजस्य बनाये रख सकते हैं।

आसन-प्राणायाम – उसके पश्चात् शारीरिक स्वास्थ्य आसन और प्राणायाम के द्वारा प्राप्त किया जाता है। और आसन भी गिने-चुने होने चाहिए, चार या पाँच, इससे ज्यादा नहीं। ये पाँच अभ्यास हर व्यक्ति के लिए अनिवार्य हैं क्योंकि इनसे

रोगी का रोग भी दूर होता है और स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की वृद्धि भी होती है। रोग-निवारण और स्वास्थ्य-वृद्धि, दोनों काम सम्भव हो जाते हैं। शरीर के अनुशासन के लिए, प्राणों के प्रवाह को सुचारू रूप से चलाने के लिए जो पाँच आसन हैं, वे हैं – ताड़ासन, तिर्यक् ताड़ासन, कटि चक्रासन, सूर्य नमस्कार और सर्वांगासन। इन पाँच आसनों के अतिरिक्त और कुछ करने की आवश्यकता नहीं। अगर इतना कर लोगे तो शरीर में ऊर्जा के प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा नहीं रहेगी। शरीर में लचीलापन रहेगा, स्फूर्ति रहेगी। शरीर ऊर्जायुक्त और कान्तियुक्त रहेगा।

पाँच आसनों के बाद दो प्राणायाम करने चाहिए। पहला प्राणायाम है नाडीशोधन प्राणायाम, जिससे हम स्नायविक एवं मस्तिष्क के तनावों को दूर कर सकते हैं और मस्तिष्क के केन्द्रों में प्राणों का पुनर्संचार कर सकते हैं। दूसरा है भ्रामरी प्राणायाम। ये दो प्राणायाम मस्तिष्क की चंचलता और उत्तेजना को शांत करने में सक्षम हैं। नाडीशोधन प्राणायाम से मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्ध समस्वरित होते हैं, और भ्रामरी प्राणायाम अंत:स्रावी ग्रंथियों की कार्यप्रणाली को नियंत्रित करता है। जब ग्रंथियाँ सही ढंग से कार्य करती हैं, मस्तिष्क ऑक्सीजन और प्राणशक्ति से आपूरित रहता है और उसके दोनों गोलार्द्ध सुचारु रूप से कार्य करते हैं, तब मन और मस्तिष्क की कार्यक्षमता कई गुना बढ़ जाती है। इस प्रकार पाँच आसन एवं दो प्राणायाम शारीरिक अनुशासन के लिए और तीन मंत्र मानसिक अनुशासन के लिए अनिवार्य हैं।

योगनिद्रा – तत्पश्चात् दिन में जब भी थकान का अनुभव हो, माँसपेशियाँ, मस्तिष्क और मन थके हों, तब उस थकान को दूर करने के लिए एक लघु योगनिद्रा का अभ्यास किया जा सकता है। जब थकान दूर होती है तब शरीर में फिर प्राणों का संचार होता है, शरीर ऊर्जायुक्त होता है।

शयन से पूर्व ध्यान – रात के समय अपने आपको तनावों से मुक्त करने के लिए ध्यान आवश्यक है। अगर तुम सोने से पहले अपने आपको तनावमुक्त कर सकते हो तो कालान्तर में तुम्हारा सम्पूर्ण व्यक्तित्व रूपांतरित हो जाएगा, क्योंकि जीवन में सबसे बड़ी समस्या तनाव की है।

प्रत्येक व्यक्ति तनाव से पीड़ित है लेकिन उससे निपटने में सक्षम नहीं है। तनाव इकट्ठा होता जाता है और तुम उसे निकाल नहीं पाते। इसके लिए सोने से पहले ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। इससे तुम्हारा मन शांत और तनावरहित बनेगा, वह तीव्र वृत्तियों से परेशान नहीं होगा। तनाव के समय ही मन वृत्तियों के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। जब तुम पूरी तरह तनाव-रहित होते हो, तब मन दो कदम पीछे हटकर वृत्तियों और इन्द्रिय-विषयों को निष्पक्ष रूप से देख सकता है। इसलिए रात्रि को सोने के पूर्व ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। आधा या एक घण्टा नहीं, पाँच मिनट पर्याप्त हैं। सबसे पहले अपने आपको संसार से अलग कर

लो, और चैतन्य आत्मा का विचार लाकर पाँच मिनट ध्यान करो, चाहे वह मंत्र का जप हो या ध्यान का कोई अन्य अभ्यास। और उसके बाद सो जाओ। मंत्र, आसन-प्राणायाम, योगनिद्रा और ध्यान – यह है योग के द्वारा अनुशासन। अगला अनुशासन लाना है आहार में।

आहार में अनुशासन – भोजन करने में कोई समस्या नहीं है, बल्कि उचित समय पर और उचित मात्रा में भोजन न करने से समस्या होती है। यह निश्चित कर लो कि मैं इतने बजे अपना भोजन करूँगा, इसके आगे कुछ नहीं, इसके पीछे कुछ नहीं। यह जो आदत हम लोगों को लग गई है कि जब चाहो कुछ-न-कुछ मुँह में डालते रहो, इससे अपने आपको मुक्त करने का प्रयास करो, क्योंकि यह शरीर के लिए हानिकारक है।

आयुर्वेद में कहा गया है कि शरीर में तीन प्रकार के दोष होते हैं – वात, कफ और पित्त। जब ये तीन दोष प्रबल हो जाते हैं तब आदमी रोगी होता है। हम लोग यह जो बार-बार भोजन करते हैं या कुछ-न-कुछ अपने मुँह में डालते रहते हैं, उससे पित्त की शिकायत बढ़ती है। इसलिए, आयुर्वेद और योग में कहा गया है कि आहार-अनुशासन मनुष्य के स्वास्थ्य को कायम रखने के लिए आवश्यक है। भोजन के लिए समय निश्चित कर लो। यह कोई ज़रूरी नहीं कि दिन में दो बार ही खाना है, लेकिन भोजन का समय निश्चित रहे। उत्तम तो यही होगा कि दिन में तीन बार ही खाओ – सवेरे, दोपहर और शाम। उससे ज्यादा शरीर को आवश्यकता भी नहीं है। हाँ, लोभ और लालच के लिए कोई सीमा नहीं है।

निद्रा में नियमितता – अनुशासन में तीसरी चीज़ है निद्रा। सोने का समय भी निश्चित और सवेरे उठने का समय भी निश्चित। हाँ, कुछ दिन अपवाद हो सकते हैं। बाह्य व्यस्तता या अन्य परिस्थितियों के कारण हो सकता है कि इस क्रम में कुछ दिन विघ्न हो। उसको दोष नहीं, अपवाद मानो। लेकिन जहाँ तक सम्भव हो सके, सोने और उठने का समय निश्चित कर लो। बहुत ज्यादा सोना और बहुत कम सोना, दोनों तुम्हारे मन-मस्तिष्क के लिए ठीक नहीं। सोने और जागने में नियमितता लाने से तुम्हारे मन-मस्तिष्क चुस्त-दुरुस्त रहेंगे।

योगाभ्यास, आहार-अनुशासन और निद्रा-अनुशासन – इन तीनों को अगर हम अपनी जीवनशैली में अपना लें तो हमारा जीवन अनुशासित हो जाएगा। संयम तथा अनुशासन, दोनों मिलकर साधना बनते हैं। केवल अनुशासन को साधना नहीं कहते, और न केवल संयम को। दोनों के मेल को ही साधना कहते हैं। और यह तरीका है संसारी व्यक्तियों के लिए ताकि वे अपने जीवन में थोड़ी व्यवस्था, थोड़ा अनुशासन ला सकें, एक स्वस्थ एवं शांत जीवन व्यतीत कर सकें, और उसके साथ ही साथ, अपनी क्षमताओं और प्रतिभाओं का सदुपयोग अपने तथा दूसरों के हित में करते रहें।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग साधना माला 1
(नर्मदा के तट पर)

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 203, ISBN: 978-93-81620-58-8

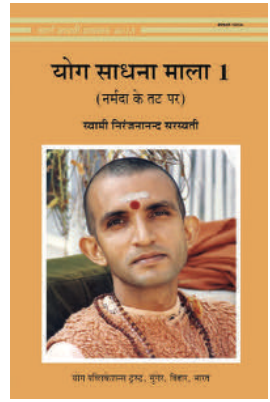

वर्ष 1993 एवं 1994 में संस्कारधानी जबलपुर में आयोजित योग सम्मेलनों में स्वामीजी ने योग के विभिन्न पक्षों पर ओजस्वी एवं प्रेरक प्रवचन दिये और दैनिक जीवन में इसकी उपयोगिता समझाकर जनमानस का आह्वान किया कि वे इसे अपने जीवन में अवश्य स्थान दें। विद्यार्थी, गृहस्थ, जिज्ञासु अथवा साधक – यह ग्रन्थ सभी के लिए समान रूप से अनुशीलन करने योग्य है।

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

www.biharyoga.net
बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद
मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर स्वामी सत्यानन्द जी एवं स्वामी निरंजनानन्द जी की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *www.satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत की जा रही हैं।

बिहार योग विकी
मुंगेर योग संगोष्ठी 2018 के अवसर पर ऑनलाइन विश्वकोश *www.yogawiki.org* प्रस्तुत किया जा रहा है जहाँ सभी साधकों के लिए यौगिक शिक्षाएँ सुगम रूप में उपलब्ध होंगी।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- बिहार योग एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st–7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2020

जनवरी 27–29	श्री यंत्र आराधना
जनवरी 30	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 9–13	योग कैप्सूल–श्वास सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 9–13	योग कैप्सूल–गठिया सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
फरवरी 23–27	योग कैप्सूल–पाचन सम्बन्धी (हिन्दी)
फरवरी 23–29	पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)
फरवरी–मार्च	द्विमासिक यौगिक अध्ययन (हिन्दी)
मार्च 14–20	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
अप्रैल 1–30	एकमासिक योग प्रशिक्षण (हिन्दी)
अप्रैल 4–8	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
अप्रैल 13–19	राज योग यात्रा 1 एवं 2
सितम्बर 19–25	राज योग यात्रा 1 एवं 2
अक्टूबर 1–30	बिहार योग शिक्षकों के लिए प्रगतिशील प्रशिक्षण 1 (अंग्रेजी)
नवम्बर –जनवरी 2021	त्रिमासिक योग अध्ययन (अंग्रेजी)
नवम्बर 2–8	क्रिया योग यात्रा 1 एवं 2
नवम्बर 21–27	हठ योग यात्रा 1 एवं 2
दिसम्बर 2–6	योग जीवनशैली कैप्सूल (हिन्दी/अंग्रेजी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 3–6 2021	योग चक्र शृंखला (अंग्रेजी)
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	गुरु भक्ति योग
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें–
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 9162783904
वेबसाइट : www.biharyoga.net **कार्यक्रमों एवं प्रशिक्षणों के आवेदन-पत्र यहाँ उपलब्ध हैं**
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा